जागोरी की त्रैमासिक पत्रिका
अप्रैल–जून 2010

हम सबला

इस अंक में

घरेलू कामगार

हम सबला

अप्रैल-जून 2010

अतिथि संपादक
सुरभि टंडन मेहरोत्रा

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

मुख पृष्ठ व अन्य रेखाचित्र
प्रशांत ए. वी.

सज्जा व मुद्रण
सिस्टम्स विज़न
दूरभाष 26811195
systemsvision@gmail.com

जागोरी JAGORI

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेल jagori@jagori.org
वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

इस अंक में

हमारी बात — सुरभि टंडन मेहरोत्रा — 1

लेख
- नियोजन एजेंसी नियंत्रण से संबंधित मुद्दे — नीता एन. — 5
- एक अदृश्य अर्थव्यवस्था-घरेलू कामगार — गीता मेनन — 8
- बाल घरेलू कामगारों के लिए मध्यम वर्ग की मांग — ज्योति सोनिया धान — 13

संवाद
- सुमी — चैताली — 15
- छोटी सी शुरूआत — मेवा भारती — 31

अभियान
- घरेलू कामगार जन-आन्दोलन — मेधा थत्ते — 17
- देश-विदेश में — 40

कहानी
- दीक्षा — पी. सत्यवती — 20

आमने-सामने
- घरेलू कामगार मंच — सि. रंजीता — 26
- अस्तित्व के बढ़ते कदम — दीपा गुप्ता व नूपुर बहुखंडी — 28

कविता
- सुननी भी पड़ती है उसकी — पवन करण — 33
- मिले काम को मान — सुनीता ठाकुर — 12
- अन्नदाता — अमृता प्रीतम

पुस्तक समीक्षा
- आलो आंधारि / अ लाईफ़ लेस ऑर्डनरी — माधवी मेनन — 35

फ़िल्म समीक्षा
- मोलकरणी — सीमा श्रीवास्तव — 37
- बेबी हालदार — सीमा श्रीवास्तव — 38
- लक्ष्मी एंड मी — सीमा श्रीवास्तव — 38

हमारी बात

घरेलू कामगार-हालात, हक़ व ज़िम्मेदारी

शहरी भारत के अनौपचारिक क्षेत्र में घरेलू कामगार, खासकर महिला घरेलू कामगार एक नियमित रूप से बढ़ता वर्ग है। पिछले तीन दशकों में पुरुष कामगारों की तुलना में इनकी संख्या में भारी बढ़ोत्तरी हुई है।[1] घरेलू कामगारों की तादाद में इस बढ़त का मुख्य कारण है कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का उत्पादन व सेवा अर्थव्यवस्था में बदलाव। एक अन्य कारण है शहरी मध्यमवर्ग का विकास विशेषकर कामकाजी महिलाओं की संख्या में बढ़त व उनके घरों में काम करने के लिए पलायनकर्त्ता व कम वेतन लेने वाले कामगारों की उपलब्धि।

घरेलू काम का स्वरूप

घरेलू काम के अवमूल्यन की वजह है घर के काम का लैंगिक स्वरूप-औरतों द्वारा घर में किये जाने वाले काम का कोई मूल्य नहीं दिया जाता। इसी तरह दूसरों के घरों में वेतनयुक्त काम को भी कोई मूल्य नहीं दिया जाता और इसको 'काम' भी नहीं समझा जाता। घरेलू काम का यह सामाजिक अवमूल्यन इन कामगारों को सामाजिक ढांचे की सबसे निचली पायदान पर रखता है। ये सभी कारण समाज व कामगारों दोनों के मानस में उनके काम को निम्न दर्जा प्रदान करते हैं।

2004-05 में शहरी भारत में 3.05 लाख महिला घरेलू कामगार थीं। जो 1999-2000 की संख्या में 222 प्रतिशत बढ़त थी।[2] इसी तरह सेवा खण्ड में रोज़गार करने वालों का 11.8 प्रतिशत (1999-2000) घरेलू कामगारों का था जो 2004-05 में बढ़कर 27.1 प्रतिशत हो गया था।[3]

विभिन्न अध्ययन दर्शाते हैं कि घरेलू काम का प्रशासन काफी अनौपचारिक है। कामगार समाज के सबसे गरीब व अशिक्षित वर्ग से आती हैं और इन अध्ययनों में उनकी मजबूरियों को रेखांकित किया गया है। अध्ययन यह भी बताते हैं कि हाशियेदार जातियों से संबंध रखने वाली महिलाएं घरेलू कामगार वर्ग का बड़ा हिस्सा हैं। घरेलू कामगारों को सम्मान नहीं दिया जाता और न ही उन्हें 'श्रमिक' के नाम से संबोधित किया जाता है। उन्हें नौकर, बाई, कामवाली आदि पुकारा जाता है जो उनके काम को 'श्रम' और उन्हें श्रमिक का दर्जा नहीं देता। कई परिवारों में कामगारों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है पर इसका पूरा दारोमदार मालिक पर निर्भर है। अपने मौजूदा स्वरूप में यह दो पार्टियों के बीच अनुबंध नहीं बल्कि एक अनौपचारिक संबंध है जिसमें समझौते कामगारों के मोल-तोल की क्षमता व काम देने वाले की अच्छाई पर आधारित होते हैं। इस काम का कार्यक्षेत्र घर होता है जो इस संबंध को एक अनौपचारिक स्वभाव प्रदान करता है। चूंकि कामगार एक साथ कई घरों में काम करती हैं इसलिए उनके लिए औपचारिक कामगारों की तरह हक़ मांगना मुश्किल होता है।

एक अन्य अहम् मुद्दा है घरेलू कामगार की उम्र। बाल श्रम (विरोध व नियंत्रण) अधिकार 1986 में घरेलू काम को 'खतरनाक' काम की श्रेणी में रखा गया है और इसकी अनुमत उम्र 18 वर्ष निर्धारित की गई है। पर इसके बावजूद बाल घरेलू कामगार विशेषतः लड़कियां भारत में मौजूद हैं। देश के सामाजिक-आर्थिक परिवेश को मद्देनज़र रखते हुए इस काम के लिए 15 वर्ष की उम्र बेशक उपयुक्त प्रतीत हो परंतु इस मुद्दे से जुड़े संगठन व बाल अधिकार समूह इस उम्र को बढ़ाकर 18 वर्ष करने की पैरवी कर रहे हैं। उनका मानना है कि बाल कामगार लम्बे घंटों तक काम करते हैं, उन्हें भरपेट व पौष्टिक भोजन नहीं मिलता तथा यौन हिंसा भी अक्सर सहनी पड़ती है। इनके पास विरोध करने की शक्ति नहीं होती, लिहाज़ा इस उम्र सीमा को बढ़ाना आवश्यक है।

घरेलू कामगारों का वर्गीकरण

भारतीय संदर्भ में घरेलू काम की परिभाषा प्रायः किए जाने वाले काम तथा उसको करने में लगने वाले घंटों (यानी मालिक के

घर बिताए समय) के अनुसार निर्धारित की जाती है। लिव-इन यानी घर में पूर्णकालिक, चौबीस घंटे रहने वाली व लिव-आउट अंशकालिक या कुछ घंटे रहने वाली कामगार-इसके दो मुख्य भेद हैं। लिव-आउट कामगार दो तरह की होती हैं- एक, जो कुछ घंटों के लिए अलग-अलग घरों में काम करती हैं तथा दूसरी, जो एक ही घर में सुबह से शाम तक रहकर रात को वापस चली जाती हैं। कई घरों में काम करने वाली कामगार दिन में दो बार, हर घर में काम करती हैं; हालांकि कुछ जगह वे दिन में एक ही बार काम करने जाती हैं। लिव-आउट काम को तय करने का एक तरीका प्रति काम 'पीस-रेट' के हिसाब से भी होता है जिसमें वेतन की दर प्रति काम के अनुसार निर्धारित की जाती है जैसे एक बालटी कपड़े धोने के लिए।

लिव-आउट कामगार अधिकतर अपने परिवारों के साथ शहर आ बसने वाले पलायनकर्ता समूह से होती हैं। शहर आकर वे झोपड़पट्टी के कठोर हालातों से जूझती हैं। इनमें से कुछ पलायन से पहले ही अंशकालिक काम करना तय कर लेती हैं तो कुछ घरों में मजबूरीवश काम करती हैं क्योंकि पति की कमाई में गुज़ारा नहीं चलता। एक-दो घर से शुरू करके वे धीरे-धीरे ज़्यादा काम करने लगती हैं जो उनके काम करने की क्षमता, पैसा कमाने की ज़रूरत और जीवन चक्र के अनुसार तय होता है। छोटे बच्चों वाली औरतें ज़्यादातर कम घरों में काम करती हैं जबकि बड़े बच्चों की माएं अधिक घरों में काम करती हैं। काम सीखने के अलावा इन्हें शहरी तौर-तरीके व संस्कृति को भी अपनाना पड़ता है। बड़े शहरों में रहने वाली कामगारों को अपनी झुग्गियां टूटने तथा शहर के बाहर बस्तियों में रहने का भी सदैव डर बना रहता है जो उन्हें बेघर और बेरोज़गार बना देता है।

पिछले दो दशकों में बड़े पैमाने पर होने वाले पलायन में एक खास बात देखने को मिली है। यह है मध्यप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड व उड़ीसा से आदिवासी लड़कियों का पलायन। ये लड़कियां अपने गांव से निजी नियोजन संस्थाओं के ज़रिए शहरी घरों में काम के लिए लाई जाती हैं। दिल्ली में इन आदिवासी लड़कियों के पलायन में बढ़ोत्तरी हुई है। निजी नियोजन संस्थाएं इन लड़कियों की गांव में ही नियोक्ति करके शहर लाती हैं जहां कुछ दिनों के प्रशिक्षण के बाद इन्हें नौकरी पर रख दिया जाता है। इन संस्थाओं को नियंत्रित करने के लिए कोई राज्य प्रशासन मौजूद नहीं है। ये संस्थाएं अपने फोन नम्बर, पहचान, दफ्तर बदलती रहती हैं जिससे इनको ढूंढ़ना मुश्किल हो जाता है। मालिकों से बड़ी कीमत कमीशन के रूप में लेने के साथ-साथ ये कामगारों के वेतन का एक बड़ा हिस्सा भी लेती हैं। एजेंट के हाथों यौन शोषण के भी मामले सामने आए हैं। अधिकांश संस्थाएं केवल व्यवसायिक हितों को ध्यान में रखती हैं, कामगारों के कल्याण की इन्हें कोई परवाह नहीं होती।[4] कामगारों के जबरन पलायन व अवैध खरीद-फरोख़्त के भी मामले सामने आए हैं।

पूर्णकालिक कामगारों के काम के घंटे निर्धारित नहीं होते और अध्ययन दर्शाते हैं कि ये करीब 18 घंटे काम करती हैं। कुछ को दिन में आराम, भरपेट भोजन या रहने की जगह भी नहीं मिलती। वेतन रोक लेना, अवकाश न देना, मौखिक व यौनिक हिंसा की भी खबरें मिली हैं। हिंसा होने पर उनके पास कोई प्रतिकार साधन भी नहीं होते। पूर्णकालिक कामगार प्रायः नियोजन संस्थाओं के माध्यम से आती हैं जो इनका वेतन भी मालिकों से ले लेते हैं। कुछ कामगार सरकारी या सैनिक आवासों में भी रहती हैं या इनको अलग क्वाटर दिए जाते हैं जिसके बदले इन्हें पूरे दिन काम करना पड़ता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ही तरह का घरेलू काम अनियंत्रित है और इनके श्रम का अवमूल्यन होता है- हर वर्ग की कामगार को कम वेतन, अधिक काम व असुरक्षा से निरंतर जूझना पड़ता है।

काम के हालात

घरेलू कामगारों द्वारा किये जाने वाले कामों में सफ़ाई (झाड़ू, पोछा, झाड़-पोंछ), धुलाई (कपड़े व बर्तन), मशीन में धुले कपड़े सुखाना/तह लगाना, खाना पकाना, सब्ज़ी काटना, आटा गूंधना, रोटी सेंकना, प्रेस, घर का रख-रखाव या फिर बाज़ार से सौदा-सुल्फ लाना आता है। घर के काम में बच्चों व बुजुर्गों की देख-रेख भी शामिल होती है।

काम के हालात तय करने के कोई 'नियम' नहीं होते।[5] वेतन ज़्यादातर इलाके के रेट के अनुसार मालिक अनौपचारिक तौर पर तय करते हैं। वेतन कामगार के मोल-तोल की क्षमता व ज़रूरत के अनुसार भी तय किया जाता है। मेहमानों के

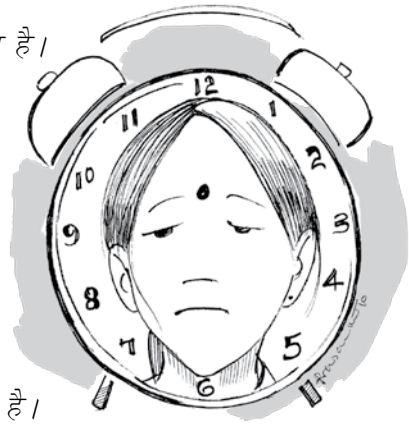

आने या त्योहारों पर कामगारों को अतिरिक्त मुआवज़े के बिना ज़्यादा काम करना पड़ता है। कामगारों के लिए काम की कोई गारंटी भी नहीं होती और उन्हें बिना नोटिस या मुआवज़े के कभी भी निकाला जा सकता है। ये हालात लिव-इन कामगारों के लिए अधिक मुश्किल पैदा करते हैं क्योंकि उनके पास जाने के लिए कोई सुरक्षित जगह नहीं होती।

केवल कुछ कामगारों को ही हफ्ते में एक छुट्टी या वेतनयुक्त अवकाश मिलता है। बीमारी अवकाश भी मालिक की भलमनसाहत पर निर्भर करता है। जचगी या फिर अतिरिक्त अवकाश लेने पर पैसों में कटौती या काम छूट जाना आम बात है।

हालांकि कुछ कामगार लम्बी अवधि तक घरों में काम करती हैं परन्तु अपने बुढ़ापे के लिए उनके पास कोई बचत या प्रावधान नहीं होते। न ही पेंशन, उपदान या बोनस होता है। स्वास्थ्य बीमा, चिकित्सीय देखभाल का भी कोई ठिकाना नहीं होता। न ही जचगी, कार्यस्थल पर दुर्घटना, आवासीय ऋण व अन्य सामाजिक ज़िम्मेदारियों के निर्वाह के लिए कोई साधन मौजूद होते हैं। इन तमाम ज़रूरतों के लिए मिलने वाला कर्ज़ या मदद मालिक के साथ कामगार के रिश्ते की अच्छाई पर निर्भर करता है। कुछ संगठन कामगारों के बच्चों की देखरेख की सुविधाओं की ज़रूरत को भी उजागर करते हैं।

संगठन व श्रमिक के रूप में पहचान की मांग व प्रयास

घरेलू कामगारों के पास शायद ही कभी सामूहिक मोल-तोल के संगठनात्मक तरीके होते हैं। पिछले तीन दशकों में कुछ संगठन व सामाजिक कार्यकत्ताओं ने इनको एकजुट करके सशक्त बनाने की दिशा में काम किया है। कुछ समूह जैसे राष्ट्रीय घरेलू कामगार आंदोलन भारत के 23 राज्यों में इस काम से जुड़ा है। यह आंदोलन कामगारों के सम्मान, बाल घरेलू श्रम उन्मूलन, खरीद-फरोख्त की रोकथाम व संकटकालीन हस्तक्षेप जैसे मुद्दों पर काम कर रहा है। विदर्भ मोलकरणी संगठन की स्थापना 1980 में नागपुर व महाराष्ट्र के दस अन्य शहरों में हुई थी। पुणे शहर मोलकरणी संगठन शहर के अंशकालिक कामगारों के लिए साप्ताहिक अवकाश, वाजिब वेतन व बढ़ोत्तरी जैसे मुद्दों से जुड़ा है। 'लर्न' महिला कामगार संगठन भी नागपुर, मुंबई, सोलापुर व नासिक में कार्यरत हैं। ये संगठन घरेलू कामगारों के साथ वेतन, सम्मानजनक उत्तरजीविका व श्रमिक के रूप में पहचान के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कर्नाटक का घरेलू कामगार अधिकार संघ कामगारों के अधिकारों के साथ-साथ हिंसा के विभिन्न रूपों पर भी काम कर रहा है। तमिलनाडु घरेलू कामगार संघ, तमिलनाडु शारीरिक श्रम कानून में घरेलू कामगारों को जोड़ने की मांग पर संघर्षरत है। मानुषी घरेलू कामगार संघ व अरूणोदय डोमेस्टिक वर्कर यूनियन चेन्नई राज्य में अन्य मुद्दों के अलावा कामगारों के पंजीकरण व वेतन संबंधी झगड़ों को सुलझाने के लिए प्रयासरत है। राजस्थान महिला कामगार संघ कामगारों की सशक्तता, वेतन संबंधी शिकायतें, बाल घरेलू कामगार मुक्ति व हिंसा संबंधी मामलों की सुनवाई से जुड़ा है।

इन सभी कार्यकर्त्ताओं व संगठनों की कोशिशों के कारण तमिलनाडु शारीरिक श्रम कानून 1982, असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा कानून 2008 (अधिनियम 33-2008) में घरेलू कामगारों को शामिल कराने तथा महाराष्ट्र घरेलू कामगार कल्याण बोर्ड कानून 2008 को पारित कराने में कामयाबी मिली है। कर्नाटक, केरल, आंध्रप्रदेश, बिहार, मेघालय, तमिलनाडु व राजस्थान राज्यों ने घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम वेतन का घोषणापत्र जारी किया है। इसके अतिरिक्त घरेलू कामगारों के लिए एक राष्ट्रीय कानून बनाने की कोशिश भी जारी है। आजकल विभिन्न संगठन व अभियान इन कानून के विभिन्न प्रारूपों पर काम कर रहे हैं। ये कार्यवाई राष्ट्रीय महिला आयोग, असंगठित क्षेत्र कामगारों के लिए राष्ट्रीय अभियान सीमित, सेवा व घरेलू कामगार अधिकार अभियान के संरक्षण में की जा रही है।

अरूणोदय माइग्रेंटस इनिशिएटिव, चेन्नई जैसे संगठनों ने विदेशों में कार्यरत महिला कामगारों के शोषण का दस्तावेज़ीकरण किया है। पलायन करके विदेश में काम करने वाली कामगारों को कठोर काम के हालात झेलने के साथ-साथ मालिकों के दुर्व्यवहार, पासपोर्ट ज़ब्त करने जैसी तकलीफों का भी सामना करना पड़ता है। खाड़ी सहयोग परिषद् संरक्षित देशों में हालात और भी गंभीर हैं क्योंकि यहां घरेलू काम को श्रम कानून के अंतर्गत नहीं रखा जाता। भारत सरकार द्वारा घरेलू महिला कामगारों के पलायन की निर्धारित उम्र 30 वर्ष को महिलाओं के काम व मात्र करने के अधिकार के हनन के रूप में देखा जाता है। सरकार ने 2005 में ओवरसीज़ इण्डियन अफैयर्स मंत्रालय का गठन किया जिसका मुख्य सरोकार कामगार पलायन मुद्दों से है।

पलायनकर्ता कामगारों के लिए कार्यरत संगठनों की मांग है कि पलायनकर्ता कामगारों के लिए व्यापक कानून, पहचान व सुरक्षा का प्रावधान होना चाहिए जिसमें रोज़गार अनुबंध, द्विपक्षी समझौता, आने-जाने वाले देशों के बीच राष्ट्रीय कानून व नियंत्रण तथा अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संधि व विज्ञप्ति भी शामिल हों। इस संदर्भ में 'घर' को कामगार का कार्यस्थल मानते हुए, कैद, दस्तावेज़ छीन लेना, घूमने-फिरने, बातचीत या अन्य सम्प्रेषण की मनाही आदि मुद्दे भी संबोधित किए जाने चाहिए। मंत्रालय ने मुख्य टीवी चैनल पर, विदेश में काम के इच्छुक कामगारों की जानकारी के लिए कानून व नियंत्रण संबंधी जानकारी प्रसारित करने के लिए एक जागरूकता अभियान भी चलाया है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने जून में घरेलू कामगारों के अधिकारों व कानूनों पर विमर्श करने के लिए एक गोष्ठी आयोजित की थी। परन्तु चर्चाओं का कोई नतीजा नहीं निकला। अब इस मुद्दे पर अगले वर्ष फिर विचार किया जाएगा। यह समझना महत्वपूर्ण है कि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा अपनाए गए किसी भी निर्णय का अर्थ होगा घरेलू काम की 'काम' की श्रेणी में पहचान और ऐसा होने पर सरकार को इन मानकों पर ध्यान देना पड़ेगा। हालांकि सभी देशों में इस मुद्दे से जुड़ी समस्याएं अलग-अलग हैं फिर भी एक व्यापक राष्ट्रीय कानून की दिशा में एकजुट प्रयास किए जा रहे हैं।

आगे बढ़ने के लिए सुझाव

घरेलू कामगारों को संगठित करने की प्रक्रिया जटिल व दीर्घकालीन है। इसके लिए सबसे पहले घरेलू कामगारों को सशक्त बनाना होगा। ऐसा तभी संभव है जब समूह बनाए जायें और कामगारों को संगठित होने का अधिकार हो। ये समूह यूनियन या संगठनों की हैसियत से कानूनों की मांग व क्रियान्वयन पर ध्यान देंगे। पर संगठन उन महिलाओं के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं होंगे जो अपना परिवार चलाने के लिए मजबूरीवश उन घरों में काम करती हैं जहां उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता हो या वेतन कम मिलता हो।

सामूहिक मोलभाव की शक्ति की समझ आने पर ही इस तरह के बदलाव की उम्मीद की जा सकती है। एकजुटता का एहसास होने पर दुर्व्यवहार और कम वेतन जैसी समस्याओं को चुनौती दी जा सकेगी। कामगारों के स्वाभिमान का एहसास होने पर वे अपने काम को मूल्यवान समझेंगी। पर सशक्तता की प्रक्रिया के साथ-साथ कामगारों को काम के प्रति ज़िम्मेदारी की समझ का भी विकास करना होगा। इससे काम के प्रति एक व्यवसायिक नज़रिया बनाने में मदद मिलेगी। अधिकार व कर्तव्य एक साथ तभी हो सकेंगे जब कामगार ज़िम्मेदारी से काम करें तथा काम को 'श्रम' का दर्जा देते हुए स्वाभिमान व सम्मान से देखें।

घरेलू काम को 'काम' का दर्जा दिलाने मे केंद्रीय व राज्य सरकारों की भूमिका भी अहम है। जिन राज्यों ने न्यूनतम वेतन विज्ञप्ति जारी की है उन्हें न्यूनतम वेतन निर्धारित करने तथा उसके कार्यान्वयन के लिए कार्यकत्ताओं व विशेषज्ञों से सलाह-मश्विरा करना होगा। इसके साथ-साथ काम के हालात तथा सामाजिक सुरक्षा का ध्यान रखने वाले कानून पारित करने पर ही कामगारों को बतौर श्रमिक सुरक्षा मिलेगी। राज्य पर दबाव बनाने के साथ ही मालिकों के साथ भी कामगारों के हक़ों की बातचीत शुरू की जानी चाहिए। कामगारों के साथ-साथ उन्हें भी घरेलू काम को 'काम' के रूप में स्वीकार करके कामगार को वाजिब मुआवज़ा देना होगा। घरेलू कामगार समूहों, मालिकों व सरकार के संयुक्त प्रयासों से ही घरेलू काम को बतौर श्रम सम्मान व पहचान मिलेगी। इन तमाम कोशिशों के बाद ही कामगारों को अधिकार मिलेगें तथा महिला श्रमिकों को कानूनी सुरक्षा हासिल होगी। काम के बेहतर हालात व सामाजिक सुरक्षा के साथ-साथ यौन हिंसा के ख़िलाफ़ सख्त कानून बनाने होंगे। इन सभी प्रयासों के बाद ही घरेलू कामगार व मालिक का संबंध व्यक्तिगत स्तर से हटकर एक नियोजक व कर्मचारी में परिवर्तित हो सकेगा; एक स्वाभिमान व सुरक्षा के साथ कार्यरत वेतनभोगी का।

सुरभि टंडन मेहरोत्रा

संदर्भ

1. *नीता एन. 2004, मेकिंग ऑफ़ फीमेल ब्रेडविनर्स माईग्रेशन एण्ड सोशल नेटवर्किंग ऑफ़ विमेन डोमेस्टिक्स इन देहली, ईपीडब्ल्यू, वाल्यूम 39 नं० 17 अप्रैल 24-30, 2004 पृष्ठ 1681-1688.*
2. *चंद्रशेखर सी.पी. व जयती घोष 2007, विमेन वर्कर्स इन अरबन इण्डिया, मेक्रोकेन, फरवरी 6, 2007.*
3. नीता एन 2008, रेग्यूलेटिंग डोमेस्टिक वर्क, ईपीडब्ल्यू, सितम्बर 13, 2008.
4. *नीता एन 2009, प्लेसमेंट एजेंसीज़ फ़ॉर डोमेस्टिक वर्कर्सः इशूज़ ऑफ़ रेग्यूलेशन एण्ड प्रोमोटिंग डीसेन्ट वर्क, 14-16 जुलाई 2009.*
5. *विशेषज्ञों व कार्यकर्त्ताओं के बीच न्यूनतम वेतन तय करने को लेकर काफी बहस चल रही है। वेतन का आधार ज़रूरत, काम, समय व रहने के लिए ज़रूरी वेतन 'लिविंग वेज' हो सकते हैं।*

नियोजन एजेंसी नियंत्रण से संबंधित मुद्दे

नीता एन.

पिछले कुछ दशकों में चौबीसों घंटे घरों में रहने वाली घरेलू कामगारों के लिए मांग में बढ़ोत्तरी हुई है। इसका मुख्य कारण है श्रम बाज़ार में औरतों की बढ़ती भागीदारी के साथ-साथ शहरी मध्यम वर्ग का विस्तार। आजकल कम वेतन पर काम करने वाली पलायनकर्त्ता कामगारों को नौकरी पर रखने का भी चलन है। बड़ी संख्या में आदिवासी क्षेत्रों से कुंवारी लड़कियों को घरों में काम के लिए एकजुट किया जा रहा है।

शहरों के माहौल व भाषा से अपरिचित ये अनपढ़, पलायनकर्त्ता लड़कियां बीच-बिचौलियों के रहमोकरम पर आश्रित होती हैं। शहर में आकर उन्हें अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिनमें वेतन न मिलना, जबरन व बंधुआ मज़दूरी तथा एजेंट, दलालों व मालिकों के हाथों यौन शोषण की संभावना भी शामिल है।

हालांकि नियोजन एजेंसी शब्द का मतलब कामगारों के लिए एक औपचारिक व संगठित नियुक्ति व रोज़गार होता है परन्तु घरेलू कामगारों के संदर्भ में इसके मायने हैं अनेक अनौपचारिक इंतज़ाम। घरेलू कामगार सेवा मुहैय्या कराने वाली एजेंसियां एक समरूपी ईकाई नहीं हैं बल्कि ये एक दूसरे से काम के तरीकों, लक्ष्य, प्रदत्त सेवाओं के लिहाज़ से काफी भिन्न होती हैं। एक ओर औपचारिक एजेंसियां होती हैं जिनकी शर्तें और कार्यान्वयन प्रक्रियाएं निश्चित होती है। इन एजेंसियों का संगठनात्मक ढांचा व चरित्र स्पष्ट तौर पर परिभाषित होता है।

एक "अनौपचारिक" एजेंसी की स्थापना और कार्य विधि को दिशा देने के लिए किसी कानूनी या सामाजिक रूप से मान्य रूपरेखा का होना आवश्यक होता है। ये या तो पंजीकृत होती हैं या फिर किसी व्यापार संगठन (सेवा) स्वयंसेवी संगठनों या गिरजाघर (युवती सेवा सदन) के साथ जुड़ी होती हैं। इन एजेंसियों की भूमिका इनके संगठन के उद्देश्यों व लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए तय की जाती है। मुख्य संगठन के पंजीकरण (व्यापार संगठन या सोसाइटी नियमों के तहत) को इन नियोजन एजेंसियों का पंजीकरण माना जाता है। काम दिलाने के अलावा ये संगठन कामगार

महिलाओं के लिए अन्य सेवाएं जैसे होस्टल, कौशल प्रशिक्षण (शिक्षा, साफ़-सफ़ाई प्रशिक्षण, खाना पकाना, घरेलू उपकरणों का उपयोग आदि) व सामाजिक मेल-जोल के लिए साप्ताहिक गोष्ठियां व क्षेत्रीय त्योहारों का आयोजन जैसी सुविधाएं भी प्रदान करती हैं।

ये एजेंसियां शहर में मौजूद उन पलायनकर्त्ता कामगारों की भी मदद करती हैं जो मालिकों व दलालों के शोषण/धोखाधड़ी का शिकार होती हैं। कुछ मामलों में ये एजेंसियां सरकारी संगठनों के साथ मिलकर भी सहायक भूमिका अदा करती हैं। अपने खास कानूनी/सामाजिक दर्ज़े के कारण ये रोज़गार व्यापार में नियोक्ता व कामगार दोनों को दोहरी भूमिका निभाती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि घरेलू कामगारों के मुद्दों को उठाने के लिए कोई कानूनी या सरकारी प्राधिकरण की स्थापना नहीं की गई है। ये एजेंसियां अपने साथी संगठनों के साथ मिलकर समन्वय समितियों तथा घरेलू कामगारों के रोज़गार से जुड़ी संस्थाओं के समूहों का भी गठन करती है। इस सामूहिक एकजुटता से इन संगठनों के दर्जे में बढ़ोत्तरी होती है जो इन्हें अन्य व्यापारिक नियोजन एजेंसियों से अलग करता है। इसके अतिरिक्त ये इन्हें मजबूर पलायनकर्त्ता लड़कियों को 'निजी' नियोजन एजेंसियों के शोषण व शिकंजे से आज़ाद करवाने के लिए सशक्तता प्रदान करती है।

दूसरी ओर वे नियोजन एजेंसियां होती हैं जिन्हें सिर्फ़ एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति साथ मिलकर, व्यापारिक हितों के लिए चलाते हैं। ये एजेंसियां घरेलू कामगारों को कोई भी सेवा प्रदान नहीं करतीं।

कुछ एजेंसियां 'औपचारिक' व 'व्यक्ति' प्रशासित न होकर बीच का रास्ता इख्तियार करती हैं। इनमें से अधिकतर अनौपचारिक मॉडल अपनाती हैं और मालिकों व कामगार दोनों को अलग-अलग तरह की सेवाएं मुहैय्या कराती हैं। ये एजेंसियां अपनी पहचान, काम की जगह व फोन नम्बर बदलती रहती हैं-कारण है इनके काम का बीच में बंद हो जाना या फिर पिछले 'ग्राहकों' (कामगार व मालिक) व 'अधिकारियों' की 'अनचाही' दखलअंदाज़ी।

यद्यपि नियोजन एजेंसियों के काम करने के तरीकों में स्पष्ट रूप से अन्तर दिखाई पड़ता है परन्तु कामगारों की नियुक्ति को लेकर इनमें काफी समानताएं नज़र आती हैं। लगभग सभी एजेंसियां बिचौलियों पर निर्भर करती हैं। हाल ही में किए गए शोध के अनुसार हर एजेंसी के पास 10-12 बिचौलिये होते हैं जो हर महीने आसपास के गांवों में जाकर, परिवारों को समझा-बुझाकर अपनी लड़कियों को शहर में घरेलू काम करने के लिए राज़ी करते हैं। इन बिचौलियों के अलावा कई एजेंसियां, धार्मिक संगठनों व मौजूदा कामगारों की सहायता से घरेलू काम के लिए कामगार तलाशती हैं।

कुछ नियोजन एजेंसियों के अपने स्थापित दफ़्तर होते हैं परन्तु अधिकांश किसी छोटी सी कॉलोनी में एक कमरा लेकर अपना काम चलाती हैं। इन दफ़्तरों में

- **असम की उषा को दिल्ली की एक एजेंसी के ज़रिये घर के काम काज के लिए रखा गया था। अग्रिम राशि के तौर पर एजेंसी ने उसके पिता को दस हज़ार रुपये दिए और उसे दिल्ली ले आये थे। उसके बाद परिवार को कोई पैसा नहीं भेजा गया। एक पूर्णकालिक कामगार के रूप में 2 साल के लिए उसे बंगलुरू ले जाने की अनुमति दे दी गई। वहां मालिक उसके साथ शारीरिक हिंसा करते थे जिसमें क्रिकेट बैट से पिटाई, लोहा गरम करके दागना व कैंची घोंपना शामिल था। उसे घर से बाहर जाने की अनुमति भी नहीं थी। उसे अपने घर का पता या फोन नम्बर कुछ भी याद नहीं है। अन्त में उसने स्त्री जागृति समिति से सम्पर्क किया। अब वह उनके आश्रयगृह में रहती है और पढ़ाई कर रही है।**
- **कन्नगि के मालिक उसे अपने परिवार का सदस्य मानते थे। एक दिन उसे अंडा उबालने के लिए कहा गया। उसने वैसा ही किया और हमेशा की तरह खाने की मेज पर रख दिया। यह देखकर मालकिन उसे गाली देने लगी क्योंकि वे वहीं पर पूजा कर रही थीं। इतनी छोटी सी भूल के लिए मालकिन ने उसे थप्पड़ भी मारा। कन्नगि ने तुरंत काम छोड़ दिया, वह अपने आत्मसम्मान पर चोट बर्दात नहीं कर सकती थी।**

केस स्टडी स्रोतः स्त्री जागृति समिति, बंगलुरू

थोड़ा सा फर्नीचर व इनके पंजीकरण की तख्ती होती है। इन एजेंसियों के बीच फ़र्क़ करने वाली एक अन्य बात होती इनके व्यापारिक हित व मुनाफे की मात्रा। इन नियोजन एजेंसियों का मुनाफ़ा लागत से काफी अधिक होता है। एजेंसी चलाने की लागत में दफ़्तर का किराया व बिचौलियों का कमीशन (1000 से 3000 प्रति व्यक्ति के हिसाब से) मात्र होता है। सभी एजेंसियां मालिकों से एक पंजीकरण फीस लेती हैं जो ग्यारह माह के अनुबंध के लिए 4500 से 10000 रुपयों तक हो सकती है। अपना कमीशन बढ़ाने के लिए एजेंसियां अक्सर घरेलू कामगारों को बिना पूछे एक घर से दूसरे घर काम के लिए भेज देती हैं।

अधिकतर एजेंसियां कामगारों को वेतन संबंधी जानकारी नहीं देती। काम के अनुभव के आधार पर कामगार की तनख्वाह 1000-4000 रुपये माहवार तक हो सकती है। शुरूआत के कुछ महीनों के वेतन को एजेंट आने-जाने का खर्चा, दलाली व अन्य खर्चे में काट लेते हैं। कुछ मामलों में नियोजन एजेंसी मालिकों से वेतन ले लेती हैं। ज़्यादातर एजेंसियां अपने द्वारा नियुक्त कामगारों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेतीं, न ही उन्हें इनकी बीमारी, काम के हालात, मालिकों की गैर मौजूदगी में रहने की सुविधा आदि से कोई मतलब रहता है।

घरेलू कामगार नियोजन एजेंसी की कार्यप्रणाली को नियंत्रित करने के लिए अभी कोई कानून नहीं बनाए गए हैं। पलायनकर्त्ता व अनुबंध के तहत काम करने वाले कामगारों को नियंत्रण करने वाले कानून ज़रूर मौजूद हैं। 1979 के *अन्तर्राज्य पलायन श्रमिक कानून (रोज़गार व सेवा प्रतिबंध नियंत्रण व उन्मूलन)* को लागू करने से पलायनकर्त्ता कामगारों की नियुक्ति करने वाली नियोजन एजेंसियों को नियंत्रित किया जा सकता है। पर ये कानून घरेलू कामगारों के मामलों में कार्यान्वित नहीं किए जा सकते।

सभी व्यापारिक व बिजनेस संस्थानों के लिए अनिवार्य है कि काम शुरू होने के एक माह के भीतर वे *दुकान व प्रतिष्ठान कानून 1954* के तहत पंजीकृत हों। परन्तु ये कानून राज्य अधिकार क्षेत्र में है जिसके कारण हर राज्य में इसके नियम भिन्न हैं। दिल्ली में 1989 से यह कानून अस्थगित रखा गया था और नवम्बर 2009 में यह प्रतिबंध हटाया गया। सभी नियोजन एजेंसियों के लिए इस कानून के अंतर्गत पंजीकरण अनिवार्य बनाने से इन एजेंसियों को सभी घरेलू कामगारों व अन्य कामगारों की नियुक्ति करने के लिए एक विस्तारित ब्योरा बनाना पड़ेगा। इस ब्योरे में मालिक का नाम, पता व कामगार का नाम पता, रोज़गार की अवधि, वेतन/भुगतान की प्रक्रिया, काम का ब्योरा व घंटे, अनुबंध की प्रति आदि शामिल किए जाने चाहिए। इसके साथ-साथ मालिकों व घरेलू कामगारों से ली जाने वाली फीस/कमीशन संबंधी दिशानिर्देश भी लिखे जाने चाहिए।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि अच्छी तरह से प्रशासित एजेंसियों के मार्फ्त नियुक्त कामगारों को भी 'संगठित' नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये एजेंसियां मात्र स्वयंसेवी संगठन हैं, ये श्रमिक संगठन नहीं हैं। चूंकि ये एजेंसियां कामगारों की नियुक्ति से भी जुड़ी हैं लिहाज़ा हितों में संघर्ष होना स्वभाविक है। इसलिए यह सुझाव कि नियोजन एजेंसियां सामाजिक सुरक्षा व काम के हालात संबंधी मुद्दों को सम्बोधित करें अवास्तविक व अव्यावहारिक होगा क्योंकि इन एजेंसियों का मुख्य लक्ष्य मुनाफ़ा कमाना होता है।

इस संदर्भ में घरेलू कामगारों के नियोजन व कल्याण से जुड़े मुद्दों को अलग रखना उचित रहेगा। कामगारों के हितों को पूर्णतः सुरक्षित रखने के लिए एजेंसियों को नियंत्रित करने वाले कानूनों के साथ-साथ घरेलू कामगारों के काम के हालात को नियंत्रण करने वाले कानूनों की भी आवश्यकता है। कामगारों के सामाजिक सुरक्षा मुद्दों को भी सम्बोधित किया जाना चाहिए। तभी बदलाव की उम्मीद की जा सकती है।

मूल अंग्रेज़ी लेख का सम्पादित अंश

एक अदृश्य अर्थव्यवस्था-घरेलू कामगार

गीता मेनन

घरेलू कामगार हमारी अर्थव्यवस्था का एक मूक व अदृश्य आधार है। पिछले कुछ दशकों में श्रमिक वर्ग में औरतों की भागीदारी बढ़ी है। भारत में कामगार औरतों की यह वृद्धि जाति व पेशागत जाति के पदानुक्रम के साथ काफी नज़दीकी से जुड़ी है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में औरतें जमींदार के खेतों व घर, दोनों जगह काम करती थीं। इसके एवज़ में उन्हें सर छुपाने की जगह व खाना-पानी मिल जाता था। नकद वेतन का कोई ज़िक्र इस लेन-देन में मौजूद नहीं था। शहरी विकास के साथ-साथ इस तरह की सामंतवादी बंधुआ दासता में खास परिवर्तन नहीं आया है। फ़र्क़ बस इतना ही है कि घर के काम के बदले कामगार को वेतन दिया जाता है और वह अपने घर वापस लौट जाती है। हालांकि सांमतवादी व घरेलू कामगार को बंधुआ समझने की मानसिकता 'नौकर' शब्द में व समाज द्वारा किए जाने वाले व्यवहार में विद्यमान है। इस अपमान के अतिरिक्त उसके श्रम का अवमूल्यन उसे न सिर्फ़ सामाजिक पदानुक्रम बल्कि श्रम पदानुक्रम में भी सबसे निचले स्तर पर रखता है।

घरेलू काम को काम का दर्जा न मिलना पितृसत्तात्मक समाज की वास्तविकता है जहां औरतों द्वारा किए जाने वाले सभी घरेलू कामों को कमतर समझा जाता है। घरेलू काम के प्रति यह लैंगिक नज़रिया केवल मालिक के मन में ही नहीं बल्कि कामगारों के दिलों में भी होता है।

घर के काम को औरतों के हिस्से का काम समझने के कारण ही लड़कियों को छोटी उम्र से ही इसमें शामिल कर लिया जाता है। आर्थिक व स्वास्थ्य से जुड़े कारणों

के चलते घरेलू कामगार अपनी छोटी बच्चियों को अपने साथ काम पर ले जाती हैं। आमतौर पर यह माना जाता है कि लड़कियों को छुटपन से ही घर का काम सीख लेना चाहिए। फिर चाहे पढ़ाई भी छोड़नी पड़े क्योंकि 'ये पति के घर जाने की तैयारी होती है।'

घरेलू कामगारों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति

यद्यपि बंगलुरू शहर में घरेलू कामगारों का कोई विस्तृत सर्वेक्षण नहीं हुआ है पर अनुमानित है कि शहर में आठ लाख से भी ज़्यादा महिला घरेलू कामगार हैं जो यहां की आबादी का दस प्रतिशत है। शहरी भारत में घरेलू कामगारों की संख्या में यह वृद्धि गांव से शहरों में पलायन के साथ जुड़ी हुई है। उत्तरजीविका की निरन्तर तलाश, आर्थिक मजबूरियां व औरतों में शिक्षा व कौशल की कमी उन्हें घरेलू कामगार बनने को बाध्य कर देती हैं। साथ ही शहरी मध्यम वर्ग का विकास से भी इस वृद्धि को बढ़ावा मिला है जहां औरतें अपने व्यवसाय के प्रति अधिक सचेत हैं। एकल परिवार के मानक, पुरुषों के असहयोग व कामकाजी औरतों के लिए राज्य की विशेष सुविधाओं के अभाव के कारण मध्यमवर्ग घरेलू कामकाज व बच्चों की देखभाल के लिए घरेलू कामगारों पर निर्भर है। इसलिए सेवा अर्थव्यवस्था में घरेलू कामगारों की बढ़ती मांग व आपूर्ति के कारण उनकी भूमिका अधिक महत्वपूर्ण बनकर उभर रही है। फिर भी आपूर्ति अधिक होने के कारण कामगारों में आपसी प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलता है।

घरेलू कामगारों की काम की परिस्थितियां व्यक्तिगत और मनमाने संबंधों पर आधारित होती हैं। इन संबंधों में व्यक्तिगत जीवनियां, औरत-औरत के बीच रिश्ते, मजबूरी, एहसास और वफादारी के अनेक ताने-बाने गुंथे रहते हैं।

घरेलू कामगारों को अंशकालिक, पूर्णकालिक, रिहाइशी व लिव-इन चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। इनमें सेना व सरकारी आवासों में काम करने वाली कामगार भी शामिल हैं। घरेलू कामगारों का विभाजन उनके काम के आधार पर भी किया जाता है- जैसे सफाई, खाना पकाना, बच्चों की देखभाल या बुजुर्गों की देखरेख करना। यह श्रम का विभाजन अक्सर जाति के आधार पर किया जाता है।

सामाजिक स्तर पर भी घरेलू कामगार भेदभाव का सामना करती हैं। मालिकों के घर में जातीय भेदभाव किया जाता है। उनके लिए अलग गिलास-प्लेट रखी जाती है; पूजाघर में उन्हें जाने की मनाही होती है। कई घरों में वे शौचालय भी इस्तेमाल नहीं कर सकतीं। विडम्बना यह है कि इन शौचालयों की सफाई यही कामगार रोज़ाना करती हैं। भेदभाव का यह रवैया इसलिए अपनाया जाता है क्योंकि प्रायः घरेलू कामगार दलित समुदाय से आती हैं। शुद्धि का ध्यान रखते हुए अनेकों बार मालिक कपड़ों व बर्तनों पर पानी के छींटे मारकर इस्तेमाल करते हैं। घरेलू कामगार चाहे घर में कितने ही घंटे काम करें उन्हें खाना या चाय नहीं दी जाती। अक्सर मालिक भूल जाते हैं कि घरेलू कामगार भी इंसान है जिन्हें अपने परिवारों का ध्यान रखना पड़ता है और जो बदतर हालातों में जीवन बसर करती हैं। इस वर्ग समूह की भी स्वास्थ्य संबंधी व अन्य समस्याएं होती हैं तथा उनके जीवन के तनाव व तकलीफें मालिकों की ही तरह आते-जाते हैं।

कई बार घरेलू कामगारों के साथ यौन हिंसा होती है जिसे वह खामोशी से सह जाती हैं। मालिक इन घटनाओं को या तो नज़रअंदाज़ कर देते हैं या फिर उल्टा आरोप इन औरतों पर ही लगा दिया जाता है। इनके साथ अक्सर अपराधियों जैसा व्यवहार किया जाता है, घर में किसी भी चोरी का आरोप सीधा घरेलू कामगारों पर लगा दिया जाता है।

घरेलू कामगारों की ये परिस्थितियां लगभग पूरे भारत में एक समान ही हैं, सिवाय क्षेत्र, इलाके, वर्ग व जाति के कुछ फेरबदल के। जाति की इस पेचीदगी

में मालिक भी फंसे हुए हैं क्योंकि घरेलू कामगार भी जाति आधारित काम के विभाजन का सख्ती से पालन करती हैं। जाति पदानुक्रम में अपने दर्जे के अनुसार वे सिर्फ़ खाना पकाने का काम करती हैं या फिर साफ़-सफ़ाई करती हैं परन्तु शौचालय की धुलाई करने से कतराती हैं।

इस प्रकार घरेलू कामगारों का पूरा वर्ग समूह अनेकों विभिन्नताओं, विभाजन और अपनी बढ़ती हुई संख्या के साथ एक बड़ी चुनौती बनकर उभर रहा है।

हमारी समझ व रणनीतियां

एक संगठन के रूप में हमारे पास अलग से बनाई कोई स्पष्ट योजना या रणनीति मौजूद नहीं है। हमें जो समझ में आता है वह एक प्रक्रिया है जिस पर अमल करते हुए गलती व सुधार पद्धति से आगे बढ़ना है व बाज़ार की मांग व आपूर्ति के अनुसार खुद को लचीला बनाना है। हमारे मानस में साफ़ तौर पर दर्ज़ है कि *"घरेलू कामगार न तो गुलाम हैं, न मशीन। वे कामगार हैं और बतौर श्रमिक उनकी पहचान को मान्यता व सम्मान मिलना ही चाहिए।"* इस सच्चाई को स्वीकारते हुए पहली रणनीति है- जागरूकता फैलाना व कामगारों को एक व्यापार संघ में संगठित करना जिससे उचित काम व वेतन के संघर्ष व मोलतोल करने की ताकत को सशक्त बनाया जा सके। संघ का यह भी प्रयास है कि श्रमिकों को मिलने वाले तमाम मूल अधिकार जैसे वेतन, साप्ताहिक अवकाश, वेतनयुक्त सालाना अवकाश, चिकित्सीय सुविधाएं, बोनस, पेंशन आदि घरेलू कामगारों को भी मुहैय्या हों। इस संदर्भ में घरेलू कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा मुहैय्या कराने का भी संघर्ष जारी है।

पर बुनियादी ज़रूरत घरेलू कामगारों की पहचान व नियमितता के लिए कानूनी प्रावधान की है जिससे कामगारों की कानूनी पहचान की जा सके। यानी घरेलू कामगारों के रोज़गार व नियंत्रण के कानून की आवश्यकता है जिससे आगे चलकर घरेलू कामगार कल्याण बोर्ड की स्थापना की जा सके। ये त्रिपक्षी बोर्ड घरेलू कामगारों के पंजीकरण की ज़िम्मेदारी लेगा जिससे उनके रोज़गार का सबूत दिया जा सके।

घरेलू कामगारों को संगठित करने के पीछे उद्देश्य है इस बात को पुरज़ोर तरीके से रखना कि घरेलू कामगार सेवा अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हमारा संघर्ष पुनः दोहराता है कि घरेलू कामगारों को उचित वेतन दिया जाना चाहिए जो घंटों के हिसाब से तय किया जाए तथा जिसका ढांचा माहवार खर्च और ज़रूरत का हिसाब रखते हुए निर्धारित किया जाए।

संगठन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए अलग-अलग रणनीतियां तय की गईं। बाल कामगारों के मामलों में ज़मीनी स्तर पर जानकारी एकत्रण, पार्क, डेरी के पास इंतज़ार करना, स्कूली बच्चों में संवेदनशीलता, सर्वेक्षण आदि की मदद से पता लगाने के प्रयास किए गए कि किन परिवारों में बाल कामगार हैं। व्यस्क घरेलू कामगारों के साथ सम्पर्क, बस्तियों, स्थानीय समूह नुक्कड़, सार्वजनिक मीटिंगों व जानकारी इकट्ठी करके किया गया। कुछ स्वयंसेवक कॉलेजों में विद्यार्थियों को अपने घरेलू कामगारों के प्रति संवेदनशील व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।

एक अन्य रणनीति जो अपार्टमेंट ब्लॉक में अपनाई गई वह है, वहां मौजूद नागरिक कल्याण समितियों से बातचीत। इन समितियों से बाल घरेलू कामगारों के मामले में काफी अच्छा समर्थन मिला है। पर व्यस्क घरेलू कामगारों को लेकर इनमें उत्साह का अभाव है। एक अन्य विचार के अंतर्गत मालिकों व घरेलू कामगारों के संयुक्त मंच की स्थापना की बात की गई, जिससे आपसी बातचीत हो सके और फिर घरेलू कामगारों के नियंत्रण व पहचान के प्रयास किए जा सकें। इससे कम से कम अपार्टमेंट स्तर पर कामगारों की बतौर श्रमिक पहचान दर्ज हो सकेगी।

- रानी के पिता जेल में थे। इस सदमे से उसकी मां मानसिक बीमारी से ग्रस्त हो गई थी। रानी के चाचा ने उसे काम पर लगा दिया पर वह खुश नहीं थी। वह स्कूल जाना चाहती थी व दूसरे बच्चों के साथ खेलना चाहती थी। रानी की मालकिन उसे स्कूल नहीं भेजती थी। एक हमदर्द पड़ोसी ने उसकी तकलीफ़ों को देखते हुए उसे दूसरी जगह काम पर लगा दिया। पर वहां भी उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता था। इस तरह अनेक घरों में काम करते-छोड़ते रानी अंत में एक आवास गृह नवजीवन में पहुंच गई। रानी की इच्छा अच्छी शिक्षा पाने व अपना घर बनाने की है।
- 70 साल की रूक्मिणी अम्मा ने एक ही घर में 45 सालों तक काम किया। वेतन बढ़ाने की बात करने पर मालिक ने उसे काम छोड़ देने के लिए कहा। बूढ़ी हो जाने के कारण रुक्मिणी ज़्यादा मेहनत वाला काम नहीं सकती थी इसलिए अपने भविष्य की चिन्ता करते हुए वह उसी घर में कम वेतन पर काम करती रही।
- 42 साल लिज्जी एक आदर्श मालकिन के बारे में बात करती है जिसने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया व उसके बच्चों की शिक्षा में मदद की। मालकिन का बूढ़ा बाप उसके साथ छेड़छाड़ करता था। किसी न किसी बहाने से उसे छूता व चूमने के लिए कहता। वह दृढ़ता के साथ इनका सामना करती थी। शिकायत करने पर मालकिन ने उस पर बाप के साथ बुरा बर्ताव करने तथा चोरी करने का आरोप लगाया। उसे तुरंत निकल जाने के लिए कहा गया। इस घटना ने उसके परिवार को आर्थिक संकट में डाल दिया जिस कारण से वह लम्बे समय तक अपमान सहते हुए संघर्ष करती रही।
- सेना क्वार्टरों में पद्मा ने मुफ्त ठिकाने के लिए काम लिया था। यहां उसे केवल 200 रुपया वेतन दिया जाता था और दिन-भर हाज़िर होने की अपेक्षा की जाती थी। उसे मुफ्त राशन भी नहीं मिलता था जो सेना का आम नियम था। उस पर काम का भारी बोझ था। वह अगर मालिकों को अपने काम से संतुष्ट नहीं कर पाती थी तो उसे गालियां व मारपीट सहनी पड़ती थी।

केस स्टडी स्रोतः स्त्री जागृति समिति, बंगलुरू

अन्य रणनीतियां

संघ बनाने व सदस्यों को समूह में एकत्रित करते हुए जयनगर ईकाई ने महसूस किया कि संघ के सदस्यों को अधिक विश्वसनीयता प्रदान करने की आवश्यकता है। इसलिए संघ बनाने के साथ-साथ हमने तय किया कि घरेलू कामगारों का एक समूह गठित किया जाए जो महिलाओं को काम दिलाने के लिए नियोजन एजेंसी की भूमिका निभाए। इस समूह/नियोजन एजेंसी की मदद से काम के लिए बेहतर हालात सुनिश्चित किए जा सकेंगे। इस एजेंसी की मदद से कामगारों व मालिकों के बीच एक अनुबंध बनाने की प्रक्रिया भी शुरू की जाएगी जिससे दोनों ओर ज़िम्मेदारी व जवाबदेही सुनिश्चित हो सकें। हमारा प्रयास यह भी है कि ऐसी रणनीति ईजाद की जा सके जो मालिकों को भी संबोधित करे क्योंकि मालिक व कामगार के संबंध अन्य रिश्तों से अधिक जटिल होते हैं।

रणनीति के तौर पर कौशल विकास

घरेलू कामगारों के लिए वाजिब वेतन और बेहतर काम के हालात मुहैय्या कराने के साथ ही कामगारों के कौशल विकास व व्यवसायिकता पर भी ध्यान देना होगा। इससे घरेलू कामगारों का आत्मविश्वास व हौसला बढ़ेगा। हालांकि हमने खाना पकाने व घर का रख-रखाव सिखाने के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाएं चलाई हैं परन्तु इसका परिणाम कुछ खास नहीं दिखाई पड़ा है। वेतन व कौशल के बीच भी सीधा संबंध भी कम दिखाई पड़ता है। हम यह समझ चुके हैं कि हमारे ढांचागत संसाधन इस समस्या को सीधे तौर पर हल करने में असमर्थ हैं। लिहाज़ा हमें छोटे पैमाने पर परीक्षण छोड़कर व्यापक स्तर पर कार्यवाही करनी होगी। रणनीतियों की बात करते समय हमें यह याद रखना होगा कि हमें कोई कामयाबी तब तक हासिल नहीं होगी जब तक घरेलू कामगार खुद इन रणनीतियों को सफल बनाने की शक्ति का एहसास नहीं करेंगी।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि घरेलू कामगारों को मान व अधिकार दिलाने के लिए एकजुट होकर संयुक्त प्रयास करने होंगे। तभी इस अहम कामगार वर्ग समूह को उनका जायज़ दर्जा व न्याय मिलेगा।

मूल अंग्रेज़ी लेख का संपादित अंश

कविता

मिले काम को मान

सुनीता ठाकुर

घर की तलाश में घर–घर किया काम
हाथों को चैन नहीं, पांवों को नहीं आराम
जीना हुआ हराम
काम का दाम नहीं, कहने को कोई नाम नहीं
'बाई' की कमाई पर, घर भर करे आराम
जीना हुआ हराम
कोई घूरता रहा, कोई बिसूरता रहा
नोचा नज़रों की भूख ने, मेहनतकश का सम्मान,
जीना हुआ हराम
देहरियों को पोंछती रही, भूल गई सब पहचान
बर्तनों की खन–खन में, रहा याद बस 'बाई' नाम
जीना हुआ हराम
काम की पहचान हो, इज़्ज़त और सम्मान हो
अधिकार का संघर्ष है, आराम अब हराम है
कोई न अब रहे बेकाम, मिले काम का सही दाम।
हो न जीना हराम

डिगनिटी, रिकॉगनिशन, सोशल सिक्योरिटी

डोमेस्टिक वर्कर्स पब्लिक हियरिंग रिपोर्ट

स्त्री जागृति समिति, बंगलुरु तीन दशकों से असंगठित क्षेत्र में महिलाओं के साथ कार्यरत है। इसी काम के दौरान घरेलू कामगार अधिकार यूनियन की स्थापना हुई जो घरेलू कामगारों के मुद्दों को उजागर करने की दिशा में पहल थी। इस वर्ग की खामोशी को तोड़ने का तथा इनकी समस्याओं को सामने लाने के उद्देश्य से घरेलू कामगारों की प्रथम जनसुनवाई आयोजित की गई जिसका विषय था- *आत्मसम्मान, पहचान व सामाजिक सुरक्षा।*

घरेलू कामगार समाज का एक अदृश्य श्रमिक वर्ग है जिसे पहचान नाम व मान मिलना ही चाहिए। इस जन सुनवाई के माध्यम से घरेलू कामगारों को बतौर इंसान एक सम्मानीय ज़िंदगी व उनके काम को श्रम का दर्जा दिलाने का प्रयास किया गया है।

इस जनसुनवाई की रिपोर्ट अंग्रेज़ी में उपलब्ध है। यह रिपोर्ट इस मुद्दे पर होने वाली पहली जनसुनवाई का पहला दस्तावेज़ीकरण है।

प्रति के लिए लिखें: स्त्री जागृति समिति
दूरभाष: 080-22734956/09845445408 ई-मेल<mahila_21@yahoo.co.in>

लेख

बाल घरेलू कामगारों के लिए मध्यम वर्ग की मांग

ज्योति सोनिया धान

बाल घरेलू कामगारों के विषय में नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने कहा है: *यह आर्थिक गरीबी नहीं बल्कि राजनीतिक गरीबी है जो बच्चों को उनके शैक्षिक अधिकारों से वंचित कर उन्हें श्रमिक वर्ग की ओर धकेल रही है। हमारी कार्यवाई का उद्देश्य इस राजनैतिक गरीबी पर हमला होना चाहिए जिससे बच्चों की शिक्षा तक पहुंच व बाल घरेलू कामगारों की बंधुआ मुक्ति हो सके।*

बाल घरेलू कामगार भारत में बाल मज़दूरी का आम पारम्परिक रूप है। बाल घरेलू कामगार उन बच्चों को कहा जाता है जो अपने परिवार से बाहर किसी अन्य घर में नकद वेतन या सुविधा के एवज़ में घरेलू कामों को करते हैं। भारत में 12.6 लाख बच्चे काम करते हैं।

पर बाल घरेलू कामगार बनने के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? कुछ मुख्य कारण गरीबी, वैकल्पिक रोज़गार का अभाव, स्त्री शिक्षा के प्रति मां-बाप का नज़रिया व "बाल घरेलू कामगारों के लिए मध्यम वर्ग की मांग" हैं। गरीबी को परिभाषित करने वाले कारण हैं- कम आमदनी के स्रोत और खाने वाले ज़्यादा, कर्ज़े का भुगतान व कृषि से घटती आमदनी के नतीजतन बाल घरेलू कामगार बनने की मजबूरी। कृषि ज़मीन से परिवार को साल में से आठ महीने आमदनी होती है, बाकी के चार महीने लोग मज़दूरी करते हैं। अकाल या बाढ़ के समय स्थिति और भी बदतर हो जाती है। ऐसी आपदा की स्थिति में माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने से ज़्यादा रोज़गार पर लगाना पसन्द करते हैं। खासतौर से लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता बल्कि उन्हें घरेलू कामगार के रूप में काम करने भेज दिया जाता है। इसके साथ ही सरकारी कार्यक्रमों योजनाओं और कल्याण सुविधाओं की असफलता से पैदा हुई खाद्य असुरक्षा ने बच्चों को काम पर लगने के लिए मजबूर किया है।

मध्यम वर्ग में घरेलू कामगारों की मांग अधिक बौखलाहट का मुद्दा है। औरतों के घर के बाहर काम करने के चलन से घर के काम के लिए पैसा लेकर काम करने वाली घरेलू मददगार की ज़रूरत पड़ती है। पर केवल यही कारण जायज़ नहीं है। अक्सर देखा गया है कि जिन घरों की औरतें बाहर काम नहीं करती उन घरों मे भी बाल घरेलू कामगार हैं। परिवार वाले बच्चों को काम पर रखना ज़्यादा पसंद करते हैं क्योंकि उन्हें उतने ही काम के लिए बच्चों को बड़ों से कम पैसा देना पड़ता है। यह भी माना जाता है कि बच्चों को नियंत्रित करना आसान होता है। वे आज्ञाकारी होते हैं तथा परिवार की ज़रूरत के अनुसार उन्हें आसानी से प्रशिक्षित किया जा सकता है। बाल कामगार ज़्यादा मेहनती होते हैं। उनमें यूनियन में संगठित होने या मोल-भाव करने की क्षमता भी कम होती है।

आमतौर पर मध्यमवर्गीय परिवार गांव के आसपास या वहां रहने वाले रिश्तेदारों से कम वेतन और खासतौर पर लड़की कामगार दिलाने के बारे में बात करते हैं। मासिक वेतन 200 रुपये से लेकर 1500 रुपये के आसपास ही होता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि लड़की को किस शहर भेजा जा रहा है। अगर काम महानगर में होगा तो वेतन अधिक होगा और अगर वह कस्बाई ज़िले में काम करेगी तो पैसा कम होगा। बच्चों के माता-पिता भी अपनी बेटी को उन परिवारों में काम के लिए भेजना पसंद करते हैं जहां ज़्यादा वेतन मिलता हो।

सरकार द्वारा सर्व शिक्षा अभियान चलाए जाने पर भी माता-पिता को बच्चों को स्कूल भेजने में कोई रुचि नहीं होती। इस अरुचि का मुख्य कारण है लैंगिक पूर्वाग्रह। क्योंकि माता-पिता भी मध्यम वर्ग की घरेलू कामगार की मांग से परिचित होते हैं इसलिए उन्हें अपनी बेटियों को घरेलू काम करने के लिए भेजने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। नई दिल्ली में झारखंड, छत्तीसगढ़, बिहार और पश्चिम बंगाल से आने वाली लड़कियों का तांता लगा रहता है। दूर दराज़ के आदिवासी गांव से लड़कियां झारखंड के रांची, लोहरदग्गा, खुंटी, गुमला और सिमडेगा ज़िलों में आती हैं जहां उन्हें काम पर रखा जाता है। अन्य राज्यों में भी यही व्यवस्था है।

बाल घरेलू कामगारों को नौकरी पर लगवाने के लिए भी अनेक नियोजन एजेंसियां मौजूद हैं। ये एजेंसियां मालिक व बच्चों के माता-पिता दोनों के बीच बिचौलिये का काम करती हैं। गांव के आसपास घूमकर सबसे ज़रूरतमंद परिवारों का पता लगाती हैं। फिर लड़की को बाहर काम पर लगाने के फायदे बताकर परिवार को प्रभावित करती हैं। इस तरह एक लड़की का गांव से शहर आने का सफ़र शुरू होता है। परिवारों को यह नहीं बताया जाता कि उनकी लड़की को कहां भेजा जा रहा है। एजेंसी को काम पर रखने वाले परिवार से एक महीने का कमीशन मिलता है। चूंकि शहरों के मध्यमवर्गीय परिवार घरेलू कामगारों पर ज़्यादा पैसा खर्च करना नहीं चाहते इसलिए वे बाल घरेलू कामगार को काम पर रखने के लिए जल्दी तैयार हो जाते हैं।

बाल घरेलू कामगार के हाथों तरह-तरह के हिंसा झेलते हैं। उनके साथ बंधुआ मज़दूरों से बदतर व्यवहार किया जाता है। झारखंड के लोहरदग्गा ज़िले में ऐसे मामले सामने आए हैं जहां आदिवासी परिवारों के बच्चे, गैर आदिवासी परिवारों में बंधुआ मज़दूरी करते हैं। इसके पीछे बच्चों के माता पिता द्वारा लिये हुए कर्ज़ का भुगतान होता है।

अब सवाल यह है कि एक पढ़े-लिखे, मध्यमवर्गीय परिवार में इन बच्चों के प्रति संवेदनशीलता का अभाव क्यों होता है? क्या उनका नज़रिया 'पैसे दो और काम लो'

यूनिसेफ़ के आंकड़ों के अनुसार 35 लाख बाल मज़दूर मौजूद हैं जिनमें 20 से 40 प्रतिशत घरेलू काम करते हैं। बाल घरेलू कामगारों में 80 प्रतिशत लड़कियां हैं। यूएनडीपी की रिपोर्ट में भी दर्ज है कि 40 प्रतिशत घरेलू कामगार लड़कियां हैं जो चौदह वर्ष से कम उम्र की हैं व महानगरों में घरेलू काम करती हैं।

वाला होता है। आठ या दस वर्ष की कोमल उम्र के बाल घरेलू कामगारों के साथ बड़ों जैसा व्यवहार किया जाता है। इनको दिन में लगभग पंद्रह घंटे के आसपास काम करना पड़ता है। बीच में कभी-कभी एक घंटे की छुट्टी मिलती है। बच्चों को कम खाना दिया जाता है और उसे खाने के लिए भी उन्हें अनुमति लेनी पड़ती है। वे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और यौन हिंसा झेलते हैं। क्या एक शिक्षित व्यक्ति का यह विचार हो सकता है कि एक बार बच्चे को काम पर रख लिया तो उसके साथ मनमाना व्यवहार किया जा सकता है?

शिक्षित मध्यमवर्ग परिवारों को इस समस्या के सम्बोधन के लिए एक सकारात्मक पहल करनी चाहिए। अगर एक परिवार गरीबी के कारण अपने बच्चे को काम पर भेजता है तो शिक्षित मध्यमवर्ग का कर्तव्य है कि वे मदद के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाएं। काम कराने के लिए उन्हें अपने घर लाते हुए उन्हें यह देखना होगा कि ये अच्छी शिक्षा और पोषण से वंचित न रहें। यह रवैया बच्चों के गरीबी परिवारों को मदद करेगा और इन बच्चों को देह व्यापार में जाने से सुरक्षा भी प्रदान करेगा।

बाल घरेलू कामगारों की सुरक्षा के लिए सरकार को सख्त कानून बनाने चाहिए। ज़मीनी स्तर पर योजनाओं को पूरी तरह लागू किया जाना चाहिए जिससे गरीबी के कारण श्रमिक बनने से ज़्यादा से ज़्यादा बच्चों को रोका जा सके। अब देखना यह है कि क्या एक दिन ऐसा भी आयेगा जब बाल दिवस-14 नवम्बर पर ये बच्चे भी जश्न मनायेंगे?

साभारः खबरदाता न्यूज़विंग

सुमी

चैताली

'सुमी, ओ सुमी! कहां चली गयी? एक बालटी पानी तो ले आ!' राधा ने तीसरी बार सुमी को आवाज़ दी। सोमा को सब लोग सुमी बुलाते हैं वह राधा और रघु की बारह साल की बेटी है।

बंगाल की दक्षिण 24 परगणा के काकद्वीप से लगभग 5 किलोमीटर दूर है सुमी का गांव।

राधा का पति रघु मज़दूर है। कुछ भी काम मिले तो कर लेता है। आसपास के शहर कोलकाता, हलदिया गांव से बहुत दूर हैं। काम मिलता है तो घर वापस आने में आठ-दस दिन लग जाते हैं। पर आजकल तो काम कम ही मिलता है। ज़्यादातर समय घर में बैठना पड़ता है। ज़मीन है नहीं। तीन-तीन बच्चे हैं। दो वक्त का भात जुटाने में ही ज़िंदगी गुज़र रही है। भात हो तो नमक नहीं मिलता। बच्चों को हर दो मिनट में भूख लगती है। पता नहीं कहां से इतनी भूख लाते हैं? ऊपर से बूढ़ी सास। महाजन से उधार लेकर कल दो किलो चावल लायी थी। उसमें से थोड़ा सा बचा हुआ है। आज सबका पेट नहीं भरेगा उसमें।

अपने नसीब को कोसती हुई, तीन महीने की बेटी को गोद में लेकर राधा अंदर से बाहर आकर सुमी के पीठ पर दो हाथ मारती है।

'कब से बुला रही हूं। सुनाई नहीं दे रहा है? ऐसा ही करेगी तो भेज दूंगी दिल्ली।' सुमी सहम जाती है, उसकी आंखों में पानी आ जाता है।

मां की मार से नहीं, मां की दिल्ली भेजने वाली बात से सुमी डर जाती है। उसे पता है मां की इस धमकी के पीछे एक बड़ी वजह है। दस दिन पहले कमला बुआ दिल्ली से गांव आयी थीं। बुआ दिल्ली में घरों में काम करती है। कह रही थी पांच-छः घरों में काम करके 2500 रुपए महीने कमा लेती है। सुमी के परिवार के लिए यह बहुत बड़ी रकम है। बुआ की बेटी सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनती है। सुमी को तो दुर्गा पूजा पर भी कुछ नया नहीं मिलता।

कमला बुआ का पति भी दिल्ली में काम करता है। वह छः साल पहले दिल्ली गया था। छः-सात महीने बाद वापस आकर पूरे परिवार को भी दिल्ली ले गया। दरअसल कमला की ननद पहले से ही दिल्ली में रहती थी। उसने ही कमला के परिवार को काम तलाश करने में मदद की थी। कमला हर एक-दो साल बाद अपनी मां से मिलने गांव आती है।

राधा ने इस बार विस्तार से अपनी हालत कमला के सामने बयान की। हो सकता है कमला का पति रघु के

लिये भी दिल्ली में कोई काम ढूंढ दे! कमला ने राधा को निराश नहीं किया 'रघु को दिल्ली में काम तो मिल जाएगा, पर इस बारे में मुझे ज़्यादा पता नहीं है। तू चाहे तो सुमी को मेरे साथ भेज सकती है। इस बार गांव आने से पहले मेरी मालकिन की सहेली, 12-13 साल की लड़की को काम पर रखने के लिए कह रही थीं। उनके घर में सारा दिन काम करने के लिए एक लड़की की ज़रूरत है। जो लड़की काम करती थी उसकी शादी हो रही है इसलिए उन्हें नई कामवाली चाहिए।'

'अच्छा! सुमी को क्या-क्या काम करना पड़ेगा? सुमी छोटी है न। कभी इतना काम किया नहीं है। पता नहीं कर पाएगी या नहीं।'

'अरे पगली, चिंता मत कर। गांव जैसा काम वहां थोड़े करना है! बस बच्चों के साथ रहना है और कभी-कभार घर के काम में हाथ बंटाना है।'

'पैसा कितना मिलेगा?' राधा ने पूछा।

'मैं बात करके 400 रुपए महीना तय कर लूंगी। तू बस रघु से बात कर। बाकी का काम मैं देख लूंगी।'

उसी दिन रात में राधा ने रघु से बात की। अपने काम के लिये तो रघु राज़ी हो गया, पर बेटी के लिये 'हां' नहीं कह पाया। राधा भी मन से तैयार नहीं हो पा रही थी। आखिर में तय हुआ की रघु दिल्ली में काम की तलाश करेगा। उसके बाद अगर सुमी के लिए कोई काम सही लगा तब देखा जाएगा।

पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। कमला बुआ ने किसी न किसी तरह रघु व राधा दोनों को मना ही लिया। मनाने में ज़्यादा मेहनत भी नहीं करनी पड़ी। बेटी को भर-पेट खाने को मिले, हाथ कुछ पैसा भी आए तो बुराई-भलाई कहां सोच पाता है इंसान।

सुमी दिल्ली आ गई। पहले-पहल वह एक कोठी में ही रहकर काम करती थी। शुरू-शुरू में घर की याद आती थी, बहुत रोना भी आता था। अकेले सोने में डर लगता था। खाना से पेट नहीं भरता था। मालिक लोग कम खाते हैं। और मांगने की हिम्मत नहीं होती। शर्म भी आती थी। सारा दिन-रात सलवार-कमीज़ पहननी पड़ती थी। बहुत गर्मी लगती थी। देर रात तक जागना पड़ता था। मालिक ग्यारह बजे से पहले खाना नहीं खाते थे! उन लोगों के खाने के बाद सफाई करके, रसोई का काम समेट कर ही सुमी सोने के लिए जाती थी। वह खाना खाने वाले कमरे में ही सोती थी।

आज भी उन सब दिनों के बारे में सोचकर बुरा लगता है सुमी को। उसे दिल्ली आए हुए अब 14 साल हो गए हैं। उसकी शादी हो गई है, एक बेटी भी है। पर आजकल सुमी पूरे दिन घर में रहकर काम नहीं करती। वह चार-पांच घरों में पार्ट-टाईम काम करती है। सुबह घर से निकलो और शाम तक वापस आ जाओ। उसकी सास भी कोठियों में खाना पकाने का काम करती थी। अब वह सारी कोठियां सास ने सुमी को दे दी हैं। सुमी की कमाई से ही घर चलता है। पति को कभी-कभी काम मिलता है। उससे घर नहीं चलता। वह जितना कमाता है वह तो यार-दोस्तों के साथ पीने -पिलाने में ही खर्च हो जाता है। पहले लगता था कि बस बहुत हुआ, सब छोड़कर कहीं भाग जाए, पर जैसे-जैसे दिन बीतते गए सुमी को इस ज़िंदगी की आदत पड़ गयी।

सुबह चार बजे उठना, सारा काम खत्म करके रात बारह बजे सोना। पूरा दिन इतना काम होता है कि अपने बारे में सोचने तक की फुरसत नहीं मिलती। सुबह मजबूरी में उठना पड़ता है। काम पर जाने में देर हो जाएगी तो काम से निकाल दिया जाएगा। फिर खाएंगे क्या? गुज़ारा कैसे होगा? परिवार की थोड़ी सी बेहतर ज़िंदगी के लिए दो कोठियां और ज्यादा पकड़ी हैं। जिस तरह से झुग्गियों को तोड़ा जा रहा है, उसको देखते हुए घर का भी कोई ठिकाना नहीं रहा है।

आज बच्चे जिस स्कूल में जाते हैं, पता नहीं कल जा पाएंगे या नहीं? आज जो दो-चार पैसे पति घर में देता है, वह कल देगा या नहीं? कल कोठियों में काम रहेगा या नहीं? आज जो सांस ले पा रहे हैं वह कल ले पाएंगे या नहीं? न जाने ऐसे कितने सवाल बस की खिड़की के पास बैठकर दिमाग में उथल-पुथल मचाते रहते हैं। घुटन से दिल भारी हो जाता है। मानो सारी हवा बंद हो गयी है। कहीं तूफान तो नहीं आएगा?

फिर मन कहता है, आने दो, खोखले सूखे पत्तों को गिर जाने दो। कम से कम कोई नन्हा छोटा हरा पत्ता देखने को तो मिलेगा! सोच कर अच्छा लगता है। उम्मीद की किरण आंखों में जगमगाने लगती है। और एक निश्चय के साथ सुमी के कदम सरपट अपने गंतव्य की ओर बढ़ जाते हैं।

घरेलू कामगार जन-आन्दोलन

मेधा थत्ते

20 मार्च 2010 को पुणे की एक बड़ी बस्ती में रहने वाले छः हज़ार लोगों ने जुलूस निकाला और पुणे नगरपालिका के दफ़्तर पर धरना दिया। इस मोर्चे में औरतों ने बड़ी तादात में हिस्सा लिया। उनका कहना था कि नेहरू पुनर्निमाण मिशन के तहत बन रही बिल्डिंग को सिर्फ़ पांच मंजिल तक बनाया जाना चाहिए। लिफ्ट के अभाव में इस बिल्डिंग में पांचवें माले तक रहना मुमकिन है परन्तु उसके ऊपर ग्यारहवें या बारहवें माले पर रहना नामुमकिन है। बिल्डर और उसके साथियों की गुण्डागर्दी के बावजूद ये लोग हार मानने को तैयार नहीं थे और अपनी मांगें लेकर मोर्चे पर डटे हुए थे। इस मोर्चे में सबसे आगे घरेलू कामगार महिलाएं थीं और इसे निकालने के लिए *पुणे शहर मोलकरणी संघटना* ने बहुत मेहनत की थी।

पुणे शहर मोलकरणी संघटना की शुरूआत

इस संगठन की स्थापना 1980 में हुई और तब से कामगारों के साथ मिलकर उनके लिए संघर्ष करने का सिलसिला निरन्तर जारी है। अक्टूबर 1980 में कंधारे नाम की घरेलू कामगार औरत को उसकी मालकिन ने काम से निकाल दिया। कंधारे का दोष इतना था कि वह बीमार थी और इस वजह से वह काम पर न जा सकी। चार के बजाय छः दिन की छुट्टी कर लेने के कारण उसका काम छूट गया। कमरतोड़ महंगाई के बावजूद कंधारे मात्र नौ सौ रुपये मासिक वेतन पर काम कर रही थी। कंधारे ने उस सोसाईटी की सभी कामगार महिलाओं को इकट्ठा किया और अपनी परेशानी सबके सामने रखी। बीमार होना क्या गुनाह है? महंगाई बढ़ने पर हम अगर अपना वेतन बढ़ाने की मांग करते हैं तो क्या यह गलत है? सभी बातें समूह को वाजिब लगीं और कंधारे के साथ हुए दुर्व्यवहार से नाराज़ होकर, कर्वे रोड पर स्थित सभी हाउसिंग सोसाईटियों में काम करने वाली घरेलू कामगार औरतें काम छोड़कर सड़क

फ़ोटो: पुणे शहर मोलकरणी संघटना

पर निकल आयीं। उनकी मांग थी कि इस तरह किसी को भी काम से नहीं हटाया जा सकता है तथा कम वेतन में गुज़ारा करना मुश्किल है। सब एकत्रित होकर एक पेड़ के नीचे बैठ गईं। तभी कुछ लोग आए और पूछताछ करने पर औरतों ने उन्हें सारी बात बताई और कहा कि वे हड़ताल पर हैं। पर जब उनसे पूछा गया कि उनका नेता कौन है तो सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगीं। इसी मीटिंग में घरेलू कामगार औरतों का संगठन शुरू करने का निर्णय लिया गया।

जब कोई संगठन घरेलू कामगारों की एकता बढ़ाने की कोशिश करता है तो यह स्वाभाविक है कि उनके जीवन की अन्य समस्याऐं भी उस संगठन से जुड़ जाती हैं। इसीलिए सवाल चाहे झुग्गी-झोपड़ी का हो, घरेलू हिंसा या राशन का ये कामगार अपनी समस्या लेकर संगठन के पास चली जाती हैं और सब साथ मिलकर हर समस्या का समाधान खोजते हैं।

दीपावली बोनस

महाराष्ट्र में दीपावली का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। 1970 में घरेलू कामगारों ने बड़े ज़ोर-शोर से इस पर्व पर अपने बोनस की मांग उठाई। अब तक उन्हें इस त्योहार पर एक स्टील का गिलास या ब्लाऊज़ पीस दिया

फोटो: पुणे शहर मोलकरणी संघटना

जाता था। पहली बार दीपावली से पहले पुणे शहर की सड़कों व दीवारों पर पोस्टर दिखाई दिए जिनमें कामगारों की यह मांग थी कि दीपावली के अवसर पर बोनस मिलना चाहिए। *पुणे शहर मोलकरणी संघटना* ने इस मांग को लेकर मोर्चे निकाले और अखबारों में भी अभियान चलाया। शहर के मध्यमवर्गीय लोगों ने इस मांग पर अलग-अलग प्रतिक्रिया व्यक्त की। कुछ लोगों ने इसे स्वीकार किया परन्तु कुछ लोगों ने इस मांग को लेकर बहुत नाराज़गी दिखाई। उनका मानना था कि ट्रेड यूनियन व लाल झण्डे वगैरह का चूल्हे-चौके तक आना उनके लिए बहुत बड़ी मुसीबत बन सकता है। सभी अखबारों के संपादकीय स्तंभों में घरेलू कामगारों की इस मांग को ज़ायज़ ठहराया गया। इन सबका नतीजा यह निकला अगली दीपावली पर पूरे एक महीने का वेतन घरेलू कामगारों को बोनस के रूप में मिला। यह इस आन्दोलन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। आज भी पुणे के सभी इलाकों में दीपावली पर एक महीने की तनख्वाह बोनस के रूप में दी जाती है। महाराष्ट्र सरकार से कामगारों की यह मांग है कि इस बोनस देने की प्रथा को कानूनी संरक्षण दिया जाए ताकि भविष्य में कभी किसी के साथ नाइन्साफ़ी न हो सके।

संघर्ष हमारा नारा है

पुणे शहर मोलकरणी संघटना की स्थापना घरेलू कामगारों को उनका हक़ दिलाने के लिए संघर्ष से हुई थी। यह संघर्ष अब भी जारी है। घर में किए जाने वाले सभी कामों को कमतर समझा जाता है और इन सभी कामों को औरतों की ज़िम्मेदारी माना जाता है। घरेलू काम का पारिश्रमिक निर्धारित नहीं होता जबकि आज का अर्थशास्त्र कहता है कि हर काम का पारिश्रमिक तय होना चाहिए। इसी कारण घरेलू काम में लगे परिश्रम का मूल्य नहीं दिया जाता और यही परम्परा सालों से चली आ रही है। इन सब बातों को अगर हम सामने रखकर सोचें तभी हम समझ पाएंगे कि घरेलू कामगार औरतें की उचित वेतन की मांग का संघर्ष कितना महत्वपूर्ण है। इसीलिए घरेलू कामगार चाहती हैं कि कामगारों के लिए कानून बने और उन्हें उसका संरक्षण मिले।

सरकार से मांगें

दिसम्बर 2009 में महाराष्ट्र सरकार ने घरेलू कामगारों के लिए एक कानून पारित किया। इस कानून के अन्तर्गत हर ज़िले में घरेलू कामगारों के लिए एक बोर्ड की स्थापना करने का प्रावधान है। यह बोर्ड घरेलू कामगारों के लिए कल्याणकारी योजनाएं बनाएगा और उन्हें लागू भी करेगा। परन्तु इस कानून के पारित होने के डेढ़ साल बाद भी बोर्ड की स्थापना नहीं की गई है और न ही योजनाओं के लिए धनराशि जुटाई गई। असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए बीमारी, पेंशन आदि के लिए संरक्षण देने के लिए सरकार ने योजनाएं प्रस्तुत कीं। अर्जुन सेनगुप्ता कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार इस देश के मज़दूरों में 93 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र के कामगार हैं। इनके लिए न तो न्यूनतम वेतन का प्रावधान है और न ही इन्हें बीमार होने पर सुविधाएं दी जाती हैं। घरेलू कामगार इन्हीं असंगठित कामगारों का हिस्सा हैं। केन्द्र और राज्य सरकार दोनों ही केवल कानून बनाकर यह दर्शाना चाहती हैं कि वे कामगारों के हित के लिए काम कर रही हैं। परन्तु बजट से धनराशि आवंटन करना उनके कार्यक्रम में शामिल नहीं है। महाराष्ट्र के घरेलू कामगार इस संघर्ष में सबसे आगे हैं।

घरेलू कामगारों ने सरकार से यह मांग बार-बार की है कि उन्हें कामगार समझा जाए और सभी कामगारों की तरह उनके लिए भी न्यूनतम वेतन, बोनस, उपदान, प्रसूति सुविधाएं व साप्ताहिक अवकाश के कानूनी प्रावधान निर्धारित किए जाएं।

घरेलू कामगारों की एक अन्य मांग खाद्य सुरक्षा के लिए है। इस दिशा में इनकी दो मुख्य मांगे हैं- राशन

कार्ड पर हर परिवार को 35 किलो अनाज, कम दामों पर, हर महीने मिले तथा कामगारों के लिए मंहगाई भत्ता तय किया जाये। पुणे शहर के हर इलाके में वेतन बढ़ाने के लिए हड़ताल करने की परम्परा बन चुकी है। *पुणे शहर मोलकरणी संघटना* हर दो साल के बाद कामगारों के मार्गदर्शन के लिए एक लाल कार्ड जारी करता है जिससे इन कामगारों को यह अनुमान हो जाता है कि वह कितने वेतन की मांग कर सकती हैं। सामूहिक रूप से आन्दोलन करके घरेलू कामगारों को अपनी शक्ति का एहसास होता है और उनमें आत्मसम्मान और आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

इस संगठन से सामाजिक व राजनीतिक जानकारी लेकर बहुत सारी घरेलू कामगार इसकी कार्यकर्त्ता बन गई हैं। हक़ों के संघर्ष के साथ-साथ परिवार में होने वाली घरेलू हिंसा के निदान के लिए भी *पुणे शहर मोलकरणी संघटना* ने परामर्श केंद्र स्थापित किए हैं जिससे घरेलू कामगारों को सशक्त बनाया जा सके।

कानून

महाराष्ट्र घरेलू कामगार कल्याण बोर्ड कानून

(संख्या एक, 2009)

धारा	धारा परिभाषा
2	'घरेलू काम' का अर्थ है घर का काम जैसे झाड़ू-पोछा, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, खाना पकाना तथा अन्य शारीरिक काम जो 'मालिक' व 'कामगार' की आपसी सहमति द्वारा तय किया गया हो तथा 'कार्यस्थल' पर किया जाए। 'मालिक' शब्द का अर्थ घरेलू कामगार के संबंध में परिवार के मुखिया के रूप में नियंत्रण रखने वाले/व्यक्ति अथवा मैनेजर। 'कार्य स्थल' यानी रिहायशी बंगला, बाड़ा, मकान, फ्लैट, महल, कोठी या इस तरह की अन्य जगह या उसका हिस्सा जिसके किसी भी हिस्से में घरेलू काम किया जाता हो या करवाया जाता हो।
	बोर्ड का संविधान व कार्यसूची (राज्य व ज़िला)
3	राज्य सरकार- ज़िला घरेलू श्रम कल्याण बोर्ड
10	अ) घरेलू कामगारों का पंजीकरण ब) निम्न सुविधा प्रदान करने के लिए:- 1. दुर्घटना होने पर तुरंत सहायता 2. उपकृत बच्चों की शिक्षा के लिए वित्तीय सहयोग 3. उपकृत व उस पर आश्रित व्यक्तियों के लिए चिकित्सीय खर्चा 4. उपकृत महिलाओं के लिए प्रजनन सुविधाएं (केवल दो बच्चों तक सीमित) 5. उपकृत की मृत्यु होने पर उसके कानूनी वारिस को अंत्येष्टि खर्चा 6. बोर्ड द्वारा तय की गई इस श्रेणी की अन्य सुविधाएं 7. अनुदान का संस्थापन व प्रशासन 8. अफ़सरों व मालिकों की नियुक्ति

घरेलू कामगारों के लिए उचित काम पर राष्ट्रीय गोष्ठी 15-16 जुलाई 2009, आईएचसी, नई दिल्ली के दौरान प्रचारित ***ऑल्टरनेटिव लॉ फोरम 2009, कम्पेरिटिव स्टडी ऑफ़ डीडब्ल्यू एक्टस,*** *बंगलुरू पर रूपान्तरित। यह कानून महाराष्ट्र में पारित हो चुका है।*

कहानी

दीक्षा

पी. सत्यवती

"सुन री मंगा, बाबूजी परसों माला ले रहे हैं। कल जल्दी आकर तुझे घर की साफ़-सफ़ाई करनी है। आने वाले चालीस दिनों में पहले हमारे ही घर आकर तुझे सवेरे-सवेरे काम निपटाकर जाना है।"

बाबूजी की माला के बारे में मंगा जानती है। माला लेने से पहले जो जुल्म वे करते हैं, यह भी वह जानती है। इसके अलावा माला लेने के बाद उनका जो 'लाड़-दुलार' होता है, यह भी वह बख़ूबी जानती है। इस दौरान बीबीजी की हड़बड़ी और पस्ती भी उससे छिपी नहीं रहती। "कल घर की सफ़ाई हो जानी चाहिए", मालकिन ने एक बार फिर चेताया।

चाहे कुछ भी हो जितने दिन वे 'दीक्षा' में रहते हैं, उतने दिन वह घर एक मंदिर जैसा बना रहता है। घर में क़दम रखते ही चमेली, गुलाब और अगरबत्ती की महक से एकदम मंदिर के से माहौल का आभास होने लगता है। मंगा का काम भी बहुत ज़्यादा बढ़ जाता है।

"दवाइयों की कम्पनी के बाबूजी कल दीच्छा ले रहे हैं। बीबीजी ने मकान की सफ़ाई करने के लिए कहा है। मुझे कल जल्दी जाना होगा।" घर आकर मंगा ने बुढ़िया से कहा।

"कौन-सी दीच्छा?" बुढ़िया ने पूछा।

"अय्यप्पा की दीच्छा। काले कपड़े पहनते हैं न, वह।"

"बाप रे, सुना है कि वह मंदिर तो बहुत दूर है और इस दीच्छा पर खरच भी बहुत आता है।"

"आता है तो क्या। उनको कुछ कमी है! अब चार साल से जा रहे हैं वे।" कहकर मंगा चूल्हा जलाने चली गयी।

सास को रात में दिखाई नहीं देता। दिन में थोड़ा-बहुत पकाकर बच्चों को खिला देती है। रात की ड्यूटी मंगा की है।

"इस बरस अपना रमेश भी माला लेने की बात कह रहा है। लाल कपड़ों वाली माला। भवानी माता की माला" बुढ़िया बोली।

"तुमसे कहा था क्या?"

"हां, सबेरे खाना खाते बखत कह रहा था। अच्छा ही तो है। यह पीना-वीना सब बन्द हो जाएगा।" दांत निकालकर बुढ़िया बोली।

"जब होगा, तब न!" कहकर मंगा काम में लग गयी।

घर में ठाकुरजी के लिए अलग कमरा। मंदिर जैसा। दरवाज़े में घंटियों वाले किवाड़। सारी मूर्तियां चांदी की। ऐसे लोग माला लें, तो अच्छा लगता है। लेकिन उसके पास कोई कमरा है? मंदिर है? रमेश जाने कैसे सब करेगा?

रात को रमेश दस बजे लौटा। वही, रोज़वाली बू। बकबक भी वही, रोज़ की। जो सब्ज़ी बनी होती है, वह पसन्द नहीं आती। चीख़ना और लड़ाई-झगड़ा। माला ले ले तो अच्छा ही है। यह सब तो नहीं होगा।

"अरी मंगा!" सवेरे उठते ही रमेश ने ऐसे कहा जैसे किसी निर्णय पर पहुंच गया हो, "अगले सुक्कर को मैं और मेरे दोस्त भवानी की माला ले रहे हैं।"

'जब ले, तब की बात है!' मंगा ने मन में कहा और "ठीक है।" कहकर टोकरी उठाकर काम पर चली गयी।

माला तो बाबूजी ने ही ली है, लेकिन पूजा का सारा इंतज़ाम बीबीजी को करना होता है। उन्हें ठाकुरजी की फोटो पर फूल चढ़ाने होंगे, घी में बत्ती भिगोकर रखनी होगा, दीपक जलाना होगा। अगरबत्तियों के स्टैंड में अगरबत्तियां लगाकर साथ में माचिस तैयार रखनी होगी। आरती की थाली में कपूर की टिकियां रखनी होंगी। नैवेद्य के लिए फल व दूध रखना होगा। बाबूजी पूजा की किताब आधा घंटे तक पढ़ते हैं। फिर घंटी बजाकर आरती उतारते हैं। इस बीच बीबीजी मेज़ पर गरम-गरम नाश्ता लगाती हैं।

आरती के समय घर के सब लोगों को दौड़कर वहां पहुंचना होता है और भभूत का तिलक लगाना होता है।

बाबूजी काले कपड़ों में ही दफ़्तर जाते हैं। चप्पल नहीं पहनते। नहीं पहनते तो क्या हुआ? कार को छोड़कर पांव ज़मीन पर थोड़े ही रखते हैं। यह सब करना रमेश के बस की बात है क्या? बिना चप्पल बाज़ार में चलना कितना मुश्किल होता है!

"मैं क्यों फिकर करूं? जो भी तकलीफ़ है, वही भोगेगा।" मंगा ने सोचा। एक तरफ़ रमेश के माला लेने की बात सुनकर वह सोच रही है, 'कैसे निभेगा यह सब?' तो दूसरी तरफ़ मन कह रहा था 'थोड़े दिन तो घर में शांति रहेगी', 'अच्छा ही रहेगा।' इतने में उसे हंसी भी आ गयी। उससे पूछा थोड़े ही था रमेश ने कि 'क्यों री मंगा, माला लेने की सोच रहा हूं, तू क्या सोचती है?'

असल में रमेश किसी बात में मंगा से सलाह नहीं करता। पिछले साल भी ऐसा ही किया था। पानी के पम्प की सुविधा वाले मकान में रहते थे। रमेश ने मकान मालिक से झगड़ा किया और मिनटों में मकान बदल दिया था। मंगा से यह नहीं पूछा था कि यह मकान तुझे पसन्द है या नहीं? नई जगह पानी नहीं है। मरो या जीओ। सीढ़ियां चढ़कर ऊपर तक पानी ढोना पड़ता है। पड़ोस के कुछ पुरुष कांवड़ों में पानी भर लाते हैं, फिर काम पर चले जाते हैं। पर रमेश यह सब नहीं करता। शुरू-शुरू में वह बहुत रोयी। अब आदत पड़ गयी है। चाहे उसके रोने की वजह से या अड़ोस-पड़ोस के मर्दों की देखादेखी, किसी-किसी दिन रमेश भी कांवड़ कंधे पर उठा लेता है। इतने से ही बुढ़िया मां का दिल दुखने लगता है। "अरे बेटा संभलकर चला करो,..." वह कहती रहती है।

घर लौटकर मंगा ने भी अपनी डेढ़ कोठरी की खोली में झाड़-पोंछकर रंगोली बनायी। जहां काम करती है, वहां किसी से मिन्नत करके आम की पत्तियां लाकर दरवाज़े पर बांध दीं। आधी कोठरी में साड़ी का पर्दा टांगकर मंदिर बना दिया। टोले-मुहल्ले में उससे पहले माला लिए हुए लोग, भविष्य में लेने का इरादा रखने वाले लोग, उनकी मांएं, दीदियां, पत्नियां, भाभियां, सबने मंगा को ढेर सारी सलाह और हिदायतें दीं।

"हाय रे, लगता है, माला रमेश ने नहीं, मैंने ली है।" मंगा ने मन में कहा।

"देख री मंगा, रमेश से कहना, कल से वह नाश्ते मे फेरीवाले के यहां से इडली-दोसा न खाया करे। स्नान करके, साफ़-सुथरी होकर तुझे ही घर में कुछ बनाकर देना होगा।" किसी पड़ोसिन ने चेताया।

"आज के बाद से रमेश 'तेरा आदमी रमेश' नहीं है री! साच्छात भगवान है, जानती है न? जो करना है, ख़ूब सर्धा से करना। बेटा होगा।" दूसरी ने हिदायत दी।

अगले दिन नदी में स्नान करने के बाद लाल रंग के नए कपड़ा पहन, गले में रुद्राक्ष की माला, माथे पर चंदन की बिन्दी लगाकर रमेश आया, तो मोहल्ले-टोले के लोगों ने उसके पैर छूकर प्रणाम किया। मंगा ने भी प्रणाम किया।

"आज नाश्ता क्या बनाकर देगी?" रमेश ने पूछा। असल में मंगा को यह नाश्ता-वाश्ता बनाने की मंगा को आदत नहीं है। रमेश सवेरे फेरीवाले के यहां से या किसी छोटे होटल में जो मन करे, वह खा लेता है। मंगा को किसी-न-किसी बीबीजी से कुछ खाने को मिल जाता है। बुढ़िया के साथ भी नाश्ते का कुछ चक्कर नहीं है। वह थोड़ा-सा-बासी भात खा लेती है। दोनों बच्चों को थोड़ा दूध देकर मंगा काम पर चली जाती है।

दोपहर का खाना बनाकर बुढ़िया रख देती है। अब साक्षात् भगवान बना हुआ रमेश रात का बचा भात कैसे खाएगा? ग़लत बात होगी। माला लिए हुए रमेश के दोस्तों की बीवियों ने भी तरह-तरह के नाश्ते बनाने शुरू कर दिए हैं।

"आज के दिन रमेश के लिए मैं कुछ भिजवा दूंगी। कल से अपना इन्तज़ाम कर लेना।" एक मालाधारी की पत्नी ने दया दिखायी।

उससे एक दिन पहले ही रमेश बाज़ार से चार जोड़े लाल कपड़े, दो तौलिए, दो चादरें और एक नई चटाई ख़रीद लाया था। दूसरों की इस्तेमाल की हुई चीज़ों का प्रयोग पूजा में नहीं कर सकता था!

"सब्ज़ी मंडी जाकर शाम को घर का कुछ ज़रूरी समान लाऊंगी, पैसे दे दो।" मंगा बोली।

"मेरे पास कहां हैं पैसे? जो थे, उनसे कल कपड़े वग़ैरह ले आया हूं न! तू ही कुछ कर!" रमेश ने पल्ला झाड़ लिया।

'भवानी' से तकरार करना अच्छा नहीं होता इसलिए मंगा ने कहा,"ठीक है।" और सब्ज़ी मंडी जाकर सब्ज़ी, फूल-फल, नारियल, अगरबत्तियां, कपूर की टिकिया, उड़द की दाल, इडली का मोटा और पतला रवा, गेहूं का आटा सब ले आयी। साथ ही बाज़ार से इडली बनाने वाला कुकर भी खरीद लायी।

अय्यप्पा की माला का नियम है कि माला वाले को ही नहीं, उससे बात करने वालों को भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। इसलिए मंगा को यह सच बताना ही पड़ा कि उसने समय-समय पर जो पैसे छिपाकर रखे थे, उन्ही पैसों से यह सामान लायी है। और दिन होते तो कह देती कि काम पर से उधार करके लायी है।

नियम के अनुसार इन दिनों रमेश को रात में भी खाना नहीं खाना चाहिए। नाश्ता ही करना चाहिए।

सवेरे नाश्ता, दोपहर को भोजन, रात को फिर नाश्ता। यह नाश्ता कोई चाहे जितना करे, भोजन के बराबर तो नहीं होता न, इसकी नाखुशी अलग।

पहले मंगा रोज़ सवेरे छः बजे उठती थी, घर की सफ़ाई करके पानी भर लाती, और फिर बच्चों के लिए दूध गरम करके काम पर चली जाती थी। घर लौटती तो बारह बज जाते।

इस बीच सास बच्चों को खाना खिलाकर नहलाती थी। मंगा आकर कपड़े धोती और रमेश के लिए कोई सब्ज़ी बनाती। वह और उसकी सास बीबियों की दी हुई सब्ज़ी या दाल से खाना खा लेतीं। रमेश को वे चीज़ें अच्छी नहीं लगतीं थीं। तीन-चार दिन में एक बार उसे मांस या मछली चाहिए। शाम को रोज़ एक 'पौवा' तो चाहिए ही। पर अब मंगा की दिनचर्या बदल गयी है।

अब उसे साढ़े-चार बजे उठना होता है। नदी पर नहाकर रमेश के लौटने तक उसे पूजा की सारी तैयारी करनी होती है। नाश्ता भी बनाना होता है। साथ ही रमेश के दोपहर के खाने के लिए साग-सब्ज़ी बनानी होती है। रमेश आजकल बारह बजे तक घर आ जाता है और खाना खाकर चला जाता है। मंगा को काम से लौटकर एक बार फिर नहाना पड़ता है, क्योंकि वह घरों में मैले कपड़े धोती है और कूड़ा उठाती है। उन कपड़ों में 'भवानी' को भोजन नहीं परस सकती! इतनी बार बदलने से गट्ठर-भर कपड़े धोने के लिए हो जाते हैं। जब से घर में पूजा-पाठ शुरू हुआ है, तब से सास भी जब बाहर जाती है तब-तब धोती बदल लेती है। छोटी अब भी बिस्तर गीला कर ही रही है। इसके अलावा रमेश के कपड़ों को अलग से धोना-फैलाना होता है। यह सब करके मंगा को फिर से काम पर जाना होता है। काम से लौटने के बाद रमेश के लिए नाश्ता क्या बनाया जाए, इसको लेकर माथापच्ची शुरू! रोज़ एक ही चीज़ खाने से रमेश को चिढ़ जो होती है।

बीबीजी तो बहुत तरह की चीज़ें बनाती रहती हैं। मंगा तो उन चीज़ों के नाम तक नहीं जानती। बीबीजी बाबूजी के लिए ढेर सारे पकवान बनाती हैं, लेकिन एक दिन भी 'अपने आदमी को खिलाना री' कहकर उसे कुछ देती नहीं। कहती हैं कि माला लिए हुए बाबूजी के खाने से पहले किसी को कुछ भी देना मना है।

बाबूजी का खाना पूरा होने तक वह रुक कैसे सकती है?

किसी चीज़ को लेकर पूछने पर कि यह कैसे बनाती हैं, बीबीजी कहती हैं- किताब में से पढ़कर बनायी है। घर में गैस का चूल्हा, मिक्सी वग़ैरह हो तो चाहे जितनी चीज़ें झटपट बना लो!

हफ़्ता बीतते-बीतते मंगा का उत्साह ठंडा पड़ने लगा। रमेश तो अपनी मस्ती में है, पेटभर खा रहा है, बीड़ी नहीं पीता, पास से निकलता है तो कपूर की महक आती है। इस तरह वह उसके पास आया था कभी। हमेशा बीड़ी और शराब की बदबू के साथ ही बीती थी उसकी गृहस्थी। रात को वह चाहे कितना भी बन संवर ले, पर क्या फ़ायदा? रमेश तो शराब और बीड़ी की बू लेकर ही पास आता था। लोग कहते हैं कि 'भवानी' के बारे में इस तरह सोचने से आंखों की रोशनी चली जाती है। मंगा ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और माफ़ी मांगी।

कपूर और इत्र की खुशबू न हो न सही, बीड़ी और शराब की बू गायब हो, तो भी बहुत बड़ी बात है।

घर में जो सामान आया था, उसे फुर्र होते देर नहीं लगी। डरते-डरते मंगा ने एक बार फिर रमेश से पैसे मांगे।

"मेरे पास कहां से आएंगे! मैं भी बीच-बीच में फूल और नारियल तो लाता ही रहा हूं। तू ही कुछ कर। तेरे बक्से में कुछ पैसे ज़रूर पड़े होंगे।"

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, तुमने जो ढेर सारा कमाकर मेरे हाथ में दिया है। दिया होता तो इस तरह दर-दर जाकर यह अंट-शंट काम करके मुझे गिरस्ती चलाने की ज़रूरत पड़ती? सर्दी में चार चादरें खरीदने की सोची थी। बच्चों को पुरानी साड़ियां ओढ़ा रही हूं।' यह सब कहने के लिए आवेश के साथ मंगा ने सर उठाया। लेकिन रमेश के चेहरे पर मुस्कराहट, माथे पर चंदन की बिन्दी और गले में रुद्राक्ष की माला देखकर उसने अपने गुस्से को दबा लिया।

"काम पर फिर उधारी करनी पड़ेगी।" मंगा बोली।

"यह भगवान का काम है मंगा, ऐसे बोलेगी तो कैसे चलेगा? अपनी बीबीजी में से किसी से मांगकर ले आ।" सास ने बेटे का पक्ष लिया।

'ठीक है, अब चारा ही क्या है! सोचकर मंगा सब घरों से एक-एक सौ रुपये पेशगी ले आयी। बच्चों को बुख़ार आए, घर के लिए सामान खरीदना हो या रिश्तेदारों की सेवा टहल के लिए मांगने पर जो मालकिनें दस चक्कर लगवा देती थीं, उन्होंने रमेश की माला की बात सुनते ही पैसे दे दिए। पुण्य कमाने का लालच किसे नहीं होता?

पैसे तो मिल गये, लेकिन अगले महीने से पगार में तो टोटा पड़ेगा न।

"जिसने चालीस दिन से सब छोड़ रखा है, वह अब शराब छुएगा ही नहीं। अगले महीने से सारी पगार तेरे हाथ में धर देगा।" मंगा के आंसू पोंछने के लिए सास बोली। वह भी रमेश का हाल जानती है। उसे जो ढाई हज़ार मिलते हैं उसमें से घर तक पन्द्रह सौ ही पहुंचते हैं। पूरी कमाई पहुंचे तो मंगा को इतनी तक़लीफ़ें उठाने की क्या ज़रूरत है? फिर वह इस तरह जूठे बरतन मलती और मैले कपड़े पछाड़ती क्यों फिरती? मंगा हमेशा सोचती है थोड़ी फ़ुर्सत मिले, तो कुछ सीना-पिरोना सीखकर किसी रेडीमेड की दुकान पर काम लग जाए। तब गुज़ारा अच्छी तरह चलेगा। लेकिन ऐसा शुभ दिन आज तक तो नहीं आया।

बीबीजी के घर में भजन का आयोजन हुआ। उस वैभव का बखान कोई क्या करे। पूरी गली में शामियाना

लगाया गया। जलती-बुझती, रंग-बिरंगी बत्तियां, ठाकुर जी के लिए बड़ा-सा मंदिर और पूरे घर में फूलों की सजावट। हज़ारों का खर्चा हुआ। सुनने में आया कि इस तरह सजावट का काम करने के लिए कुछ ख़ास लोग होते हैं। जाने कितने साधु-सन्त आए। भजन मंडली और साधुओं को ख़ूब मोटी दक्षिणा मिली है। बाबूजी के दोस्तों के घर में नौ क़िस्म की मिठाइयां बनी थीं, इसलिए बीबीजी ने अपने प्रसाद में ग्यारह क़िस्म की मिठाइयां बनवाई।

मंगा ने घर आकर वहां की पूरी रंगत के बारे में रमेश को बताया।

"हां-हां, जिसकी जैसी बिसात हो वैसा भजन रखवा ले, तो अच्छा ही रहेगा।" एक पड़ोसिन बोली।

"रमेश तुम भी ज़रूर रखवाओ, तुम्हारी बरकत होगी। इस बार लड़का होगा।" दूसरे पड़ोसी ने सलाह दी।

"ऐसा भजन हमारे बस की बात नहीं", मंगा ने टोका।

"जितना बड़ा पेड़, उतनी ज़्यादा हवा। तुमसे किसने कहा है कि उस 'लेवेल' पर रखवाओ। जैसी हमारी बिसात है, वैसा ही रखवा लेंगे। क्या कहते हो रमेश?" किसी और ने उकसाया।

उस वक़्त रमेश ने कोई जवाब नहीं दिया। मंगा पछताने लगी। यह सब उसने बताया ही क्यों? अगले महीने की लगभग पूरी पगार उसने पेशगी ले ली थी। इसके अलावा छोटे-मोटे उधार भी कई हो गये थे।

"अब मुझे कोई उधारी न देगा 'भवानी'।" मंगा बोली, चालीस दिन में अभी दस दिन बाकी थे।

भोर में रोज़ ठंडे पानी से नहाने की वजह से ज़ुकाम और बुखार हो गया तो मंगा को डॉक्टर के पास दौड़ना ही पड़ा। घर में एक तरफ 'भवानी' का पाठ हो, और वह खांसती-कराहती लेटी रहे, तो कैसे चलेगा? बेचारे 'भवानी' का काम कौन करेगा? बुखार में सौ रुपये उड़ गये। छोटी की नाक लगातार बहती रही। उसके लिए भी दवाई आयी।

"हम भी भजन रखवा रहे हैं।" दो दिन बाद रमेश ने घोषणा की। 'अब मुझे कोई उधारी न देगा भवानी', मंगा ने अपनी स्थिति साफ़ की।

"कोई बात नहीं, मैं देख लूंगा। जहां मैं काम करता हूं, वहां से कुछ पैसे ले लूंगा।" रमेश ने उत्साह से कहा। इतने दिन वहां से लिया क्यों नहीं, मंगा की यह पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

"सुनो 'भवानी' मेरी एक सलाह मानो। आप लोग चार दोस्त हैं न, चारों मिलकर एक दिन भजन रख लेना। खर्चा कम पड़ेगा।" किसी तरह हिम्मत जुटाकार मंगा बोली।

"ऐसा नहीं हो सकता मंगा। इस बार ऐसे ही चलने दे। पहली बार माला ली है न! अगली बार मिल-जुलकर कर लूंगा। तू फिकर न कर, मैं सब संभाल लूंगा। तुझे कोई तकलीफ़ न होगी। हर काम के लिए आदमी मौजूद हैं। जैसे भजन गाने वाले हैं, वैसे प्रसाद तैयार करने वाले हैं। सब मेरे ऊपर छोड़ दे।" रमेश ने आश्वासन दिया।

'चलो चलने दो, गालियां नहीं निकाल रहा है, बात-बेबात हाथ नहीं चला रहा है। कुछ-कुछ भले आदमी जैसी बात कर रहा है, यही बहुत है।' मंगा सोचती रही।

रमेश के दोस्त ने साईं बाबा के भजन का कार्यक्रम रखवाया। अगले दिन रमेश की बारी थी। उसने शामियाना लगवाया। माइक और लाइटों का भी इन्तज़ाम किया। अपनी और अपने भगवान दोनों की पसन्द के अनुरूप सारा प्रबन्ध करवाया। ग्यारह क़िस्म की न सही, तीन क़िस्म की मिठाइयां बनवायीं। जहां काम करता है, वहां से उसने कितना उधार किया, यह तो नहीं मालूम। पूछा तो 'अभी नहीं, यह बात बाद में करेंगे' कहकर टाल दिया। सबको प्रसाद लेने आने का न्योता दिया। भगवान की कृपा से दीक्षा अच्छी तरह पूरी हुई। भवानी के हज़ारों भक्तों के साथ मिलकर रमेश दर्शन करने पहाड़ पर हो आया। कृष्णा नदी में स्नान करके उसने माला उतार दी।

घर में भवानी का मंदिर हटा दिया गया। अब रमेश का रंग निखर आया था। गालों में कुछ-कुछ उभार भी आ गया था। चेहरे पर चमक आ गई थी।

रमेश की दीक्षा मंगा के लिए एक बड़ा यज्ञ साबित हुई थी। रमेश ने बाद में बताया कि जहां काम करता है, वहां से वह पांच हज़ार उधार मांग कर लाया है।

"कोई बात नहीं बेटे, उधार भगवान के लिए किया था, तूने अपने लिए तो नहीं किया न, चुकता कर देना।" सास इत्मीनान से बोली।

मंगा अब तक खूब थक चुकी है।

"क्या बताऊं बीबीजी, मेरे आदमी की दीच्छा अब जाकर ख़त्म हो गयी है। आज उबर गयी हूं मैं।" अपनी एक बीबीजी से मंगा ने कहा।

"मान ले कि तू अपने आदमी से बग़ैर पूछे ऐसी कोई दीक्षा लेती है। तब वह तेरी तरह इसी सेवा-टहल करेगा?" बीबीजी ने पूछा।

"औरतों से यह सब कहां होगा बीबीजी!" मंगा ने मायूसी से जवाब दिया।

"इसीलिए अय्यप्पा स्वामी ने होशियारी से औरतों को अपने यहां आने से मना कर दिया है।" केवल पुरुष ही यह दीक्षा ले सकते हैं।" बीबीजी बोलीं।

"तुझे क्या पसंद है मंगा, अपने आदमी का दीक्षा में रहना या मामूली तरीक़े से रहना?" बीबीजी ने अनायास ही प्रश्न किया।

मंगा क्या जवाब देती? वह सचमुच नहीं जानती थी। दोनों स्थितियों की अपनी-अपनी परेशानियां तो हैं। शाम को वह घर पहुंची तो जो बुढ़िया कभी कुछ लाकर नहीं देती थी उसने चमेली का गजरा लाकर मंगा को थमा दिया।

"रमेश ने कहा है कि वह जल्दी लौट जाएगा। जल्दी से खाना बना डाल। और तू भी नहा-धो ले।" सास ने आदेश दिया।

मंगा को लगा कि उसे चक्कर आ रहा है। पूरा बदन दर्द कर रहा है। उसकी इच्छा है कि जल्दी से खाना खाकर सो जाए। उसे चार-पांच दिन के आराम की ज़रूरत है। पर यह सुख उसकी किस्मत में कहां?

रमेश घर आ गया। एक बार फिर वह खूब भूख लेकर आया। अब वह साक्षात् भगवान नहीं है। वह तो वही पुराना रमेश है।

सवेरे आकर झाड़ू-बुहार करती मंगा को थका-थका और अनमना देखकर मालकिन ने पूछा, "क्या हुआ मंगा? ऐसी क्यों लग रही है? तेरे आदमी की दीक्षा तो ख़त्म हो गयी है न?"

मंगा ने कोई जवाब नहीं दिया।

दीक्षा लेने से पहले जिस तरह रमेश ने मंगा से कुछ नहीं पूछा था, ठीक उसी तरह पिछली रात भी उसने कुछ नहीं पूछा था।

कुछ देर चुप्पी साधकर मालकिन बोली "भक्ति हो या अनुरक्ति, भोग उनका और मरण हमारा।"

मंगा उस टिप्पणी से अब भी जूझ रही है।

अनुवादः जे. एल. रेड्डी

केरल के सबरिमलै पहाड़ पर स्थित अय्यप्पा स्वामी की 40 दिन की दीक्षा के आरम्भ में काले कपड़ों के साथ माला पहनी जाती है। इसे माला लेना कहते हैं। दीक्षा के दिनों में खान-पान और व्यवहार में संयम से रहना पड़ता है और ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। साधारण आर्थिक स्थिति के लोग, जो अय्यप्पा के मन्दिर नहीं जा सकते, वे भवानी की दीक्षा लेते हैं और दीक्षा के अन्त में विजयवाडा में स्थित देवी के मन्दिर जाते हैं। दीक्षा के नियम दोनों में समान हैं। जब तक कोई भवानी की माला डाले रहता है, तब तक सब को उसे 'भवानी' कहना होता है। सबरिमलै के अय्यप्पा मन्दिर में मासिक धर्म होने की अवस्था पार करने तक स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है।

घरेलू कामगार मंच

सि. रंजीता

एक दशक पहले जब सोलह साल की प्रिया (बदला हुआ नाम) को झारखंड के सिमडेगा गांव से दिल्ली की कोटला मुबारकपुर स्थित लक्ष्मी माता प्लेसमेन्ट सर्विस में लाया गया था तब उसे इस बात का अंदाज़ा नहीं था कि वह एक शोषित, घरेलू कामगार बन जाएगी। प्रिया बहुत मेहनत से काम करती थी लेकिन मालकिन संतुष्ट नहीं थी। उसके साथ मार-पीट व दुर्व्यवहार किया जाता था। सबक सिखाने के लिए उसे वाईपर से मारा जाता, यहां तक कि चाकू से भी गोदा जाता था। छोटी-मोटी गलतियों पर भी उससे इतना बुरा सुलूक किया जाता था जैसे कि वह इन्सान ही ना हो। सबसे तकलीफ़देह बात यह थी कि हर महीने नियमित समय पर उसका एजेंट आकर उसकी महीने भर की कमाई मालिक से ले जाता था। प्रिया को खाली हाथ रहना पड़ता था। पर यह कहानी अकेली प्रिया की नहीं है। यह उन तमाम लड़कियों की कहानी है जिन्हें घरेलू कामगार के रूप में महानगरों में लाया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के अनुसार घरेलू कामगारों की स्पष्ट परिभाषा है "वे जो निजी घरों में वेतन के एवज़ में घरेलू काम करते हैं।"

शहरी घरों में घरेलू कामगारों, खासकर महिला कामगारों की सबसे ज़्यादा मांग है। ये हमारे रोज़मर्रा के जीवन का अहम हिस्सा हैं। अपने घरेलू कामों के लिए इन पर हम निर्भर हैं। हम इन्हें रोज़ देखते हैं फिर भी हमारे लिए ये अधिक अहमियत नहीं रखती। घरेलू कामगारों की समस्या महत्वपूर्ण है, ये समाज का एक बड़ा हिस्सा है परन्तु ये आर्थिक व सामाजिक रूप से अदृश्य व दरकिनार हैं क्योंकि इनके काम को लेकर अनेकों मिथक लोगों के मन में विद्यमान हैं।

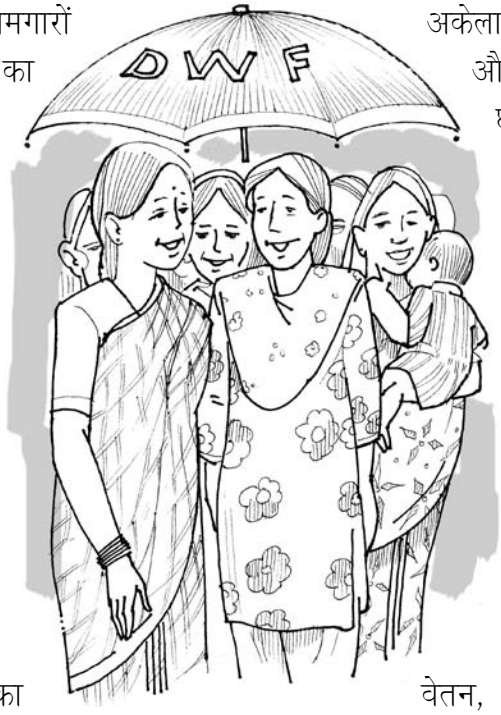

ज़्यादातर घरेलू काम करने वाली औरतें, लड़कियां और बच्चे दूर-दराज़ के गांवों से नौकरी व बेहतर ज़िन्दगी की खोज में शहर आती हैं। ये शहरी घरों में काम तो करने लगती हैं पर इन्हें गैस जलाना, मशीनों का इस्तेमाल, झाड़-पोंछ या सफाई करना, बच्चों व बीमारों का देखभाल करने जैसे काम करने का सलीका नहीं आता। इसलिए घरों में उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता तथा ज़्यादा काम करवाया जाता है। इन जगहों पर भी उनके लिए सब कुछ नया सा होता है। उन्हें घबराहट व अकेलापन महसूस होता है। अनेक तकलीफों और दुर्व्यवहार सहने पर भी वे काम छोड़कर मालिक के घर से बाहर नहीं जा पातीं।

एक घरेलू कामगार की रोज़ की दिनचर्या का विश्लेषण करने पर पाया जाएगा कि उसका काम सुबह साढ़े चार बजे शुरू होता है और देर रात से पहले खत्म नहीं होता। इस थका देने वाली व्यस्त दिनचर्या से उसे एक दिन भी छुट्टी नहीं मिलती। और न ही मनोरंजन या सामाजिक मोल-जोल का कोई मौका।

लाखों कामगारों को अपना वाजिब वेतन, हफ्तावार छुट्टी, मासिक व वार्षिक

अवकाश नहीं मिलता। कानूनी हैसियत के अभाव में घरेलू कामगार हमेशा अपने मालिकों के रहमोकरम पर निर्भर रहती हैं। मालिकों व एजेंटों के हाथों खामोशी से दुख सहना उनकी मजबूरी बन जाता है। कभी-कभी तो उनके ऊपर शारीरिक व यौनिक हिंसा के अलावा चोरी और हत्या का इल्ज़ाम भी लगा दिया जाता है। जलकर दुर्घटनावश मर जाना भी इस हिंसा में शामिल होता है।

दिल्ली में घरेलू कामगार औरतों, लड़कियों और बच्चों की यह अफ़सोसजनक स्थिति देखकर सन् 2002 से *घरेलू कामगार मंच* ने कामगारों के साथ काम करना शुरू किया और 2004 में एक परोपकारी संस्था के रूप में इसका पंजीकरण हुआ। इस मंच का लक्ष्य है घरेलू कामगारों के शोषण और महानगरों में औरतों व बच्चों के अवैध व्यापार की रोकथाम। *घरेलू कामगार मंच* ने घरेलू कामगारों के लिए ऐसी जगह की स्थापना की है जहां पर वे इकट्ठी होकर अपने मित्रों के साथ खुशी, दुःख व तकलीफों को बांटती हैं, और अपने साथ हुए अन्याय के ख़िलाफ़ लड़ सकती हैं।

यह मंच घरेलू कामगारों को-

- आत्मसम्मान के साथ जीने
- अपनी पहचान को महफूज़ रखने
- मानवाधिकारों की रक्षा करने
- उचित वेतन व काम को मान्यता दिलाने के लिए सशक्त बनाता है।

कामगारों को संगठित करने, उनकी बात सुनने और अधिकारों व न्याय के लिए संघर्ष को नैतिक समर्थन देने के लिए *घरेलू कामगार मंच* एक रविवारी सभा भी आयोजित करता है।

पिछले कुछ सालों में *घरेलू कामगार मंच* ने घरेलू कामगारों की समस्याओं से जुड़े 550 मामले निपटाए हैं। 1 अप्रैल 2009 से 31 मार्च 2010 के दौरान कुल 69 मामलों पर कार्यवाई की गई है जिनमें बहुतों को समाज में एक बेहतर ज़िन्दगी मुहैया करवाने में मंच ने सफलता हासिल की है। इनमें से 44 घरेलू कामगार बंधुआ मज़दूर थीं, 6 का वेतन रुका हुआ था, 5 यौन हिंसा व 2 मारपीट के मामले थे, 7 लापता थीं तथा 2 का मानसिक संतुलन बिगड़ा हुआ था। दो अबोध बच्चे थे तथा एक को बाल कल्याणकारी कमेटी के संरक्षण रखा गया था। इनमें से अनेकों को *घरेलू कामगार मंच* के तहत मरिसि कॉन्वेंट के आश्रयघर में रखा गया जहां उनकी तब तक देखभाल की गई जब तक वे अपने परिवारों से मिल नहीं गईं।

राजधानी में घरेलू कामगारों को संगठित करने और उनसे जुड़े मामलों को संभालने के दौरान मंच को जिन चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ा वे कुछ इस प्रकार हैं:

- घरेलू कामगारों से कम सहयोग
- मालिकों का असहयोग
- दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में गैर कानूनी नियोजन एजेंसियों की तीव्र बढ़ोत्तरी
- पुलिस विभाग का असंतोषजनक रवैया
- बचाव टीम और एजेंसियों, मालिकों के बीच संघर्ष
- पुलिस मालिक और एजेंसियों का पक्ष लेती है, कामगारों का नहीं
- विस्तृत इलाका और सीमित संसाधन

इन सब समस्याओं के बावजूद *घरेलू कामगार मंच* ने श्रम कमीश्नर व श्रम विभाग के साथ मिलकर घरेलू काम को नियंत्रित करने तथा दिल्ली क्षेत्र में कानूनी सुरक्षा दिलाने के लिए सतत् प्रयास किए हैं।

घरेलू कामगार मंच के सदस्यों का विश्वास है कि घरेलू कामगार कानून का पारित होना, इस असंगठित कामगार वर्ग समूह के अधिकारों को सुरक्षित कराने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल होगी।

फ़ोटो: अस्तित्व

अस्तित्व के बढ़ते कदम

दीपा गुप्ता व नूपुर बहुखंडी

अस्तित्व समूह की स्थापना मई 2008 को देहरादून में की गई थी। समूह का उद्देश्य था निम्न आय वाली कामगार महिलाओं को सशक्त बनाना जिससे वे बेहतर आमदनी वाले काम कर सकें और अपने जीवन पर नियंत्रण हासिल करने में सक्षम बनें।

इस समूह की शुरूआत के पीछे यह सोच थी कि महिलाओं का आर्थिक दर्जा उनको व उनके बच्चों को मिलने वाले मौकों और हक़ों पर सीधा प्रभाव डालता है। लिहाज़ा कम आमदनी व कम आर्थिक नियंत्रण का प्रभाव स्वास्थ्य, शिक्षा व पैसे के उपयोग संबंधी निर्णयों में कम भागीदारी में दिखाई पड़ता है। इससे कारण औरतों व बच्चों को हिंसा का भी अधिक सामना करना पड़ता है।

अस्तित्व समुदाय के साथ मिलकर काम करता है तथा इससे जुड़ी 70% महिलाएं घरों में काम करती हैं या पहले कभी घरेलू कामगार रह चुकी हैं। करीब 5% औरतें निर्माण मज़दूर हैं। समुदाय के 50% पुरुष निर्माण मज़दूर हैं या फिर सेल्समेन, दर्ज़ी, बढ़ई, ड्राइवर, माली अथवा हेल्पर हैं।

चूंकि *अस्तित्व* से जुड़ने वाली महिलाएं ज़्यादातर घरों में काम करती हैं लिहाज़ा समूह के काम में कुछ ऐसी विशेष गतिविधियां शामिल हैं जो घरेलू कामगारों के सशक्तीकरण को मद्देनज़र रखकर चलाई जा रही हैं।

घरेलू कामगार समूहों का संगठन

पिछले एक वर्ष से *अस्तित्व* घरेलू कामगारों को संगठित करने के लिए उनकी नियमित मीटिंग आयोजित कर रहा है। शुरूआत देहरादून के दीपनगर इलाके से की गई, जहां घरेलू कामगारों का सबसे गरीब वर्ग बसता है। पहले-पहल

मीटिंग करना मुश्किल हुआ क्योंकि महिलाएं मीटिंग का वक्त और दिन याद नहीं रख पाती थीं। फिर समूह ने हर हफ़्ते एक खास दिन पर मीटिंग रखनी शुरू की जिससे अधिक औरतें इसमें शामिल हो सकें। धीरे-धीरे मीटिंग में आने वाली घरेलू कामगारों की संख्या बढ़ी तथा वे लम्बे समय तक बातचीत में हिस्सा लेने लगीं। वे अपनी समस्याओं के बारे में भी खुलकर बताने लगीं। समूह ने दो औरतों को इन मीटिंगों का नेतृत्व करने के लिए चुना। *अस्तित्व* की भूमिका इस समूह को प्रशिक्षण सहयोग व मश्विरा देने तक सीमित रखी गई। इससे समूह में शामिल महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ा। इन मीटिंगों में घरेलू कामगारों के मालिकों को भी आमंत्रित किया गया है जिससे समस्याओं के निवारण में सहयोग मिल सके।

घरेलू कामगारों के लिए रोज़गार व्यवस्था

घरों में काम करने वाली महिलाएं *अस्तित्व* से रोज़गार तलाशने में सहयोग मांगती हैं। कुछ औरतें स्कूल में काम या फिर सिलाई आदि भी करने की इच्छुक हैं। समूह इन कामगारों से कुछ जानकारी एकत्रित करता है जिसमें काम का समय, अवधि, कौन सा काम करना चाहती हैं, वेतन आदि शामिल हैं जिससे उन्हें उनकी पसंद का काम दिलवाया जा सके। *अस्तित्व* के पास कुछ ऐसी युवा लड़कियां भी आती हैं जो घरों में छुट-पुट काम करती हैं। समूह इन लड़कियों को ऐसा काम मुहैय्या कराने में सहायता करता है जहां समय की पाबंदी न हो जिससे लड़कियां की शिक्षा जारी रह सके। *अस्तित्व* के 'लाडली' कार्यक्रम के तहत इन लड़कियों को कम्प्यूटर चलाने का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

मालिकों के साथ काम

घरेलू कामगारों की तलाश में कई मालिक भी *अस्तित्व* समूह को संपर्क करते हैं। शुरू में इन मालिकों का रवैया थोड़ा कठोर व रूखा होता है क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके पास अच्छे कामगार भेजना *अस्तित्व* की ज़िम्मेदारी है। वे अपना अधिकार दिखाकर समूह पर दबाव डालने की कोशिश करते हैं। कई मालिक कामगारों की शिकायतें भी लेकर आते हैं जैसे "हमें एक दूसरे की मदद करनी चाहिए" या "आप कामगार को बिगाड़ रहे हैं", "कामगार परेशान करते हैं" आदि। इस तरह के किस्से *अस्तित्व* को अपनी रणनीति व सोच का पुनरावलोकन करने के लिए प्रेरित करते हैं।

मालिकों को भी समझाया जाता है कि समूह का लक्ष्य असंगठित क्षेत्र में कम आय वाले कामगारों के हितों को ध्यान में रखकर काम करना है। समूह ने कामगार व मालिकों के बीच समस्याओं को सुलझाने के लिए अस्तित्व के दफ़्तर में आने को कहा जाता है जिससे बातचीत एक बराबरी के माहौल में की जा सके। मालिकों को एक फार्म भरने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे हफ्ते में एक छुट्टी और अच्छे व्यवहार की बात दर्ज होती है। समूह मालिकों को यह भी सुझाव देता है कि वे वेतन 400 प्रति काम की दर से तय करें। फुलटाईम काम के लिए कम से कम 2500 रुपये माहवार तय किया गया है। मालिकों से सौ रुपये की पंजीकरण फीस ली जाती है जिसकी एक वर्ष की वैधता होती है।

फोटो: अस्तित्व

फोटो: अस्तित्व

आमतौर पर *अस्तित्व* मालिक व घरेलू कामगारों के बीच एक व्यवसायिक रवैया विकसित करने के लिए भी प्रोत्साहित करता है। औरतों को सही समय पर काम पर जाने, क्या काम करना है इसकी पूरी जानकारी पाने, वेतन, छुट्टी तथा अतिरिक्त कामों के लिए पैसे लेने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है। *अस्तित्व* समूह की कोशिश रहती है कि घरेलू कामगार अपने काम की कीमत समझें तथा उसे सम्मान की नज़र से देखें जिससे दूसरे भी उनकी व उनके काम की इज़्ज़त करें।

काम की प्रभावशाली रणनीतियां

काम पर नियुक्ति के बाद अक्सर मालिक व घरेलू कामगार दोनों *अस्तित्व* के पास अपनी-अपनी समस्याएं लेकर आते हैं। कामगार कम वेतन और अधिक काम की शिकायत करते हैं। कभी-कभी जब कामगारों को कम अनुभव होता है और काम करने की मजबूरी तब वे कम वेतन पर भी काम करने को राज़ी हो जाती हैं। कुछ कामगारों को मालिकों के व्यवहार, ठीक से न बोलने-चालने, चाय-पानी न देने या धर्म व जाति के आधार पर भेदभाव की शिकायतें होती हैं। दूसरी ओर मालिकों को यह परेशानी होती है कि काम करने वाली औरतें नियमित रूप से काम पर नहीं आतीं या फिर देर से आती हैं। ज़्यादा छुट्टी या बिना बताए छुट्टी लेने की समस्या भी होती है।

अस्तित्व समूह ने यह पाया कि अधिकांश मालिकों के लिए कामगारों को थोड़ा अधिक वेतन देने में मुश्किल नहीं होती। वे इसके लिए तैयार भी हो जाते हैं बस उनकी सोच में बदलाव लाने की ज़रूरत होती है। *अस्तित्व* ने इस दिशा में सफलता भी पाई है और समूह द्वारा नौकरी पर लगाई गई घरेलू कामगारों को अच्छा वेतन मिलता है। समूह ने इस बात की भी कोशिश की है कि कामगार मालिकों को अपनी समस्याएं बताएं और एकदम से काम पर जाना बंद न करें। अगर किसी कारणवश वे खुद मालिक से बात नहीं कर पातीं तो समूह इस काम में उनकी सहायता करता है।

बच्चों के लिए बालवाड़ी

अस्तित्व ने अपने समुदाय के घरेलू कामगारों के बच्चों के लिए 'खुशी' बालवाड़ी की व्यवस्था की है। ये क्रेश *लतिका रॉय फाउंडेशन* की सहायता से चलाया जाता है। यहां गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को सिखाया-पढ़ाया जाता है। इस बालवाड़ी में 1-5 वर्ष के पच्चीस बच्चे हैं जो सुबह आठ से शाम छः बजे तक रहते हैं। इन बच्चों को दिन में दो बार खाना तथा फल व दूध दिया जाता है। बालवाड़ी में केवल घरेलू कामगारों के बच्चों को रखा जाता है जिससे वे आराम से काम पर जा सकें।

घरेलू कामगारों को बालवाड़ी में आकर अपने बच्चों की बातें व व्यक्तिगत समस्याओं की जानकारी बांटने में मदद मिलती है। इस क्रेश के ज़रिए *अस्तित्व* समूह घरों में काम करने वाली महिलाओं के साथ एक रिश्ता बनाने में सफल हुआ है। इस बालवाड़ी में सहयोग करने के लिए काफी दोस्त व साथी भी आगे आए हैं।

अस्तित्व ने इन सभी गतिविधियों के साथ-साथ स्वास्थ्य केंद्र जिसमें स्त्री रोग व बाल चिकित्सा प्रदान की जाती है, भी शुरू किए है। हिंसा पर कानूनी सलाह, परामर्श केन्द्र आदि भी घरेलू कामगार महिलाओं को मदद देने के लिए शुरू किये गये हैं। यहां पर आने वाली महिला पीड़ितों को काम के ज़रिए अपनी आर्थिक स्वायत्तता बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है जिससे वे सशक्त महसूस कर सकें।

छोटी सी शुरूआत

मेवा भारती

एक सामाजिक कार्यकर्ता के तौर पर काम करने के दौरान मुझे विभिन्न प्रकार के अनुभव हुए हैं। मैं एक महिला कार्यकर्ता के रूप में महिला मुद्दों पर काम करती थी। इसी के साथ *विविधा*, जो एक महिलाओं की संस्था है, के साथ भी जुड़ी हुई थी। *विविधा* में मैं प्रवासी निर्माण मज़दूरों, तथा महिलाओं के साथ आमतौर पर होने वाले भेदभाव के मुद्दों से भी जुड़ी थी।

अपने काम के दौरान मैं रोज़ सुबह इन महिलाओं के बीच जाती थी। ये निर्माण मज़दूर महिलाएं श्रमिक मण्डी में अपना श्रम बेचने का इन्तज़ार करती थीं। मैं भी उसी समय इनके बीच जाकर इनसे दोस्ती करती। धीरे-धीरे इन महिलाओं के साथ दोस्ती बढ़ने लगी और मैंने इनके घरों में जाना शुरू किया। और यहीं से हमारे काम की शुरूआत हुई। इनका घर ज़्यादातर कच्ची बस्तियों में होता था। वहां पर विभिन्न प्रकार की मज़दूरी करने वाली महिलाएं भी रहती थीं।

एक रोज़ हमारे पास एक बंगाली परिवार आया और उन्होंने हमें अपनी बेटी के बारे में बताया। उनकी बेटी किसी घर में घरेलू कामगार थी, और चौबीसों घण्टे वहीं रहती थी। उसके पचपन वर्षीय मालिक ने लड़की के साथ बलात्कार किया। लड़की को सात माह का गर्भ था। हमने लड़की को बुलाया और पूछा कि वो क्या चाहती है। लड़की ने कहा, 'मैं मालिक के ख़िलाफ़ रिपोर्ट दर्ज करवाना चाहती हूं, ताकि जो मेरे साथ हुआ है, वो किसी और लड़की के साथ न हो।'

मालिक के ख़िलाफ़ थाने में में एफ.आई.आर. दर्ज करवाई गई। वह बौखला गया और समझौता करके केस वापिस लेने के लिए दबाव बनाने लगा। लड़की का परिवार उसकी बातों में आ गया परन्तु लड़की अब नारी निकेतन में थी। मालिक तीन लाख रुपयों का चैक लेकर हमारे पास ऑफिस आया और केस को रफादफा करने के लिए कहा। पर हमने उसकी बात नहीं मानी। आखिरकार मालिक को छः माह की सज़ा हो गई। ज़िला कलेक्टर ने मुआवज़े के तौर पर लड़की को 25 हज़ार रुपये दिए। उसने एक बच्ची को भी जन्म दिया।

यहीं से हुई घरेलू कामगार महिलाओं के बीच में हमारे काम की शुरूआत। हमें लगा जयपुर शहर में हज़ारों की संख्या में ऐसी लड़कियां व महिलाएं काम करती हैं। घरों के अन्दर उनके साथ क्या होता होगा? यह सब मन में चल रहा था। हमने घरेलू कामगारों का एक विस्तृत सर्वे *जागोरी* की मदद से किया। सर्वे के दौरान हमें बहुत सी कामगार महिलाओं से मिलने व बात करने का मौका मिला। बस्तियों में ग्रुप चर्चा रखी गई जिनमें महिलाओं ने खुलकर यौन शोषण की बातें सामने रखीं। उन्होंने यह भी कहा कि किसी भी संगठन से

फ़ोटो: जागोरी

जुड़े न होने के कारण वे सब कुछ खामोशी से सहती रहती हैं।

ग्रुप चर्चा के दौरान हमने महिला संगठन और यूनियन के बारे में भी बातें की। सबकी सहमति से *राजस्थान महिला कामगार यूनियन* नाम रखा गया। यूनियन का नाम खुला इसलिए रखा गया क्योंकि हम बस्ती में काम करते हैं, उस दौरान हमारे पास दूसरा काम करने वाली महिलाएं भी अपनी समस्याएं लेकर आती हैं। उस समय हमारे सामने एक संकट होता है, हम उन महिलाओं को मना नहीं कर सकते कि हम उनकी मदद नहीं करेंगे। साधारण यूनियन होने से सभी कामगार महिलाएं यूनियन में शामिल हो सकती हैं।

फ़ोटो: जागोरी

धीरे-धीरे यूनियन का काम शुरू हुआ। शुरूआत में महिलाएं हम पर विश्वास नहीं करती थीं। इन कामगार महिलाओं पर चारों तरफ से दबाव था और इन दबावों के बीच वो अपनी जगह बनाने की कोशिश करती हैं। हमने यह भी अनुभव किया कि एक बार समझ बन जाने के बाद ये पीछे नहीं हटती। धीरे-धीरे सब ठीक हो गया और औरतें हमारे साथ जुड़ने लगीं। अब यूनियन में 700 सदस्य हैं।

जयपुर शहर में तीन क्षेत्रों की घरेलू कामगार महिलाएं हैं। बिहार, कूचबिहार (प.बंगाल) व राजस्थान के अलग-अलग ज़िलों से पलायन करके ये महिलाएं रोज़गार की तलाश में जयपुर आती हैं। यहां आकर कूचबिहार की महिलाएं सीधा घरेलू कामगार का काम करती हैं। इनकी पहचान सीधे तौर पर इसी काम से जुड़ी हुई है और घर के काम के अलावा इन्हें दूसरा कोई काम नहीं आता।

राजस्थान व बिहार की महिलाएं निर्माण के क्षेत्र में भी कार्य करती हैं। वहां काम न मिलने पर ही ये घरेलू कामगार बनती है। ये औरतें अपनी पहचान को छुपाकर रखती हैं और अपना काम बदलती रहती हैं। दूसरे काम में ज़्यादा पैसे मिलने पर ये घर का काम छोड़ देती हैं। इसलिए इनके साथ कार्यस्थल पर ज़्यादा समस्याएं आती हैं। इन्हें दोनों ही तरह के काम का अनुभव नहीं हो पाता है।

तीनों क्षेत्रों के कामगारों का आपसी तालमेल बहुत कम है। जब से यूनियन ने इन महिलाओं के बीच काम करना शुरू किया है, तब से कुछ बदलाव आया है और सभी को एक मंच पर इकट्ठा होने व अपने मन की बात कहने का मौका मिला है।

हमारे समाज में कामगारों को संगठित होने के लिए अलग-अलग श्रेणियों में बांट दिया गया है जैसे क्षेत्र, भाषा, जाति, काम आदि। इस बंटवारे के कारण ये कमज़ोर पड़ जाती हैं और शोषण को चुनौती नहीं देतीं। इन्हें पता ही नहीं चलता कि इनके अधिकार क्या हैं तथा मालिकों की क्या ज़िम्मेदारी है। यूनियन में हमें इन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके साथ ही कामगारों में यूनियन को अपना समझने का एहसास अभी पूरी तरह जागा नहीं है। उनमें ज़िम्मेदारी का भी अभाव है जिसे विकसित करने के लिए अभी बहुत मेहनत करनी होगी।

जयपुर शहर में यूनियन अपनी पहचान बना चुका है। यूनियन ने घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम वेतन निर्धारित कराने में भी कामयाबी हासिल की है। सरकार अब घरेलू कामगारों के लिए कानून पर भी बात कर रही है। इसके अलावा कामगारों के बीच यूनियन का विस्तार हुआ है जिससे सदस्यों को सशक्तता मिलती है।

मेवा भारती जयपुर की एक कार्यकर्त्ता हैं जिन्होंने घरेलू कामगार महिलाओं को संगठित होने को प्रेरणा दी। इस लेख में मेवा भारती ने राजस्थान महिला कामगार यूनियन की शुरूआत के दौरान अपने अनुभव हमारे साथ बांटने का प्रयास किया है। मेवा ने निर्माण मज़दूर महिलाओं के साथ भी काम किया है।

सुननी भी पड़ती है उसकी

पवन करण

महीने में दो–तीन दफे तो उसे टोकना ही पड़ता है
ज़रा सा ध्यान न दो तो उसने तुरत–फुरत
अपने हाथ चलाए और वो घुसी अगले घर में ।
ध्यान देना पड़ता है तो उसके पास बैठना पड़ता है
उसके पास बैठना पड़ता है,
तो फिर सुननी भी पड़ती है उसकी ।
जैसे वह बताती है, मैं जिस गली में रहती हूं न
उसमें घुसते ही मोड़ पर एक मकान है,
उसमें सट्टा चलता है ।
तरह–तरह के लोग आते–जाते रहते हैं,
कोई कुछ नहीं करता, और तो और
हर दूसरे–तीसरे रोज़ एक पुलिसवाला आता है
और वहां से रुपये ले जाता है ।
मैं उसकी मोटर साइकिल अच्छी तरह पहचानती हूं ।
वह कहती है, अब तुम्हीं बताओ, वह मास्टर साहब हैं न
वो ही जिसमें बेरिया लगी है उस स्कूल के,
जिनके दो बड़े–बड़े लड़के और एक शादी के लिए तैयार जवान लड़की है,
वह कल कलारी के भीतर से धुत्त शराब पीकर निकले ।
कैसा ज़माना आ गया है ?
मैं कलारी के सामने वाले घर भी जाती हूं न,
अब तुम्हीं बताओ ऐसा मास्टर बच्चों को क्या पढ़ाएगा ?
एक दिन उसने बताया, कल हमारे घर के सामने
न जानें कहां से आकर एक गाय मर गई ।
दिन–भर तड़पती रही बेचारी, रही डकारती
उसका पेट फूला हुआ था, जानवरों के डॉक्टर ने बताया
उसके पेट में पोलिथिन भर गई है ।
उस गाय को बचाने के लिए मैं दिन–भर
गले में केसरिया रंग का पट्टा डाले रहने वाले,
मोहल्ले के नेताजी को ढूँढ़ती रही, वह नहीं मिले ।
फिर मुझे ही जानवरों के अस्पताल जाना पड़ा ।

कई दफे तो वह बड़ी अजीब तरह की बात करती है
जैसे वह उस रोज़ बोली
वह अपने तहसीलदार साहब हैं न किशनगढ़ वाले
जिनका बड़ा सा पीला मकान है, बहुत पैसा हो गया है उन पर ।
जैसे लाटरी निकल आई हो
या मिल गया हो कोई खज़ाना ।
बीच में मैंने बन्द कर दिया था उनके यहां जाना
अब फिर से जाना शुरु किया है, तीन–चार साल में तो
दुनिया ही बदल गई है उनकी, ठाठ हो गए हैं
कितनी तनख्वाह मिलती होगी उन्हें ?
क्या सरकारी नौकरी में इतनी कमाई हो जाती है ?
कितने फल आते हैं उनके यहां,
उनके बच्चे दिन–भर टी.वी. देखते हैं
और डिब्बों में से जाने क्या–क्या खाते ही रहते हैं ।

एक रोज़ उसने दुखी होते हुए कहा
आप यदि कुछ कर सकते हो तो करो न,
जिस गली में मैं रहती हूं उसमें घुसने के लिए
नाली पर जो पत्थर लगे हैं वे टूट गए हैं,
सेठजी का सामान से भरा हुआ ट्रक उसे तोड़ गया ।
कोई मतलब नहीं उससे लोगों को, वे बचकर निकल जाते हैं
हमें बहुत पेरशानी होती है,
कई बार पांव नाली में चला जाता है
और रात–विरात तो बहुत दिक्कत आती है ।
नगर निगम का दारोगा बदलवाता ही नहीं उसे
कहता है, तुम लोगों ने ही उन्हें तोड़ा है
पूर मोहल्ले से रुपये इकट्ठे करके लाओ तब बदलेंगे,
जबकि उसके स्टोर में बहुत सारे पत्थर रखे हैं
ये काम तो नगर निगम का है न भइया ?

ध्यान देना पड़ता है तो बैठना पड़ता है उसके पास
बैठना पड़ता है तो सुननी भी पड़ती है उसकी
और ज़रा ध्यान न दो तो कभी
कमीज़ की कॉलर पर मैल रह जाता है,
कभी पैंट की कमर नहीं होती ढंग से साफ़
और कभी सफ़ेद बनियान धुलने के बाद भी दिखाई देती है मटमैली ।

आलो आंधारि (हिन्दी)

अ लाईफ़ लेस ऑर्डनरी (अंग्रेज़ी)

प्रकाशकः रोशनाई प्रकाशन 2002 (हिन्दी)

पेनगुइन व जुबान बुक्स 2006 (अंग्रेज़ी)

आलो आंधारि (अंधेरे से उजाले की ओर) नाम से रोशनाई प्रकाशन द्वारा प्रकाशित तथा उर्वशी बुटालिया द्वारा अनूदित पुस्तक *अ लाईफ़ लेस ऑर्डनरी* बेबी हालदार की बतौर लेखिका पहली कृति है।

बेबी की यह किताब सीधे ज़िंदगी से आती है। एक सेवादारिन के रोज़मर्रा के जीवन का प्रतिबिम्ब। पुस्तक की शुरूआत होती है एक खुशहाल परिवार में जहां माता-पिता, भाई व बहन जम्मू-कश्मीर और फिर मुर्शीदाबाद व डलहाऊज़ी में बसते हैं। पर कुछ ही पन्ने पलटने के बाद पाठक का परिचय एक मजबूर, पीड़ादायक और संघर्षमय दुनिया से होता है।

पुस्तक का मुख्य चरित्र बेबी हालदार है जो एक साधारण बच्ची है जिसे स्कूल जाना पसंद है। लड़की के बचपन की थोड़ी बहुत मनोरम झलकियां यहीं दिखाई देती हैं। वह पढ़ना चाहती है। उसके पिता फौज में नौकरी करते हैं। कभी घर पर नहीं रहे पर उनकी एक बात बेबी ने गांठ बांध ली थी। वे कहते थे, 'कुछ भी करो पर तुम कभी पढ़ना नहीं भूलना।'

घर के नाज़ुक हालातों से जूझती बेबी की मां का छोटे भाई के साथ घर छोड़ जाना बेबी और उसकी बहन के जीवन में बदलाव लाता है। दोनों बहनें गुज़ारे के लिए कोठियों में काम करने लगीं। पिता दूसरी शादी कर लेता है पर सौतेली मां के साथ गुज़ारा मुश्किल हो जाता है। तकलीफ़ों और अभावों में जीने की मजबूरी के बीच बेबी की बहन की शादी पंद्रह साल की उम्र में हो जाती है।

बारह वर्ष की कमसिन उम्र में बेबी का विवाह उसे कठोर सच्चाई के एक दूसरे चक्रव्यूह में झोंक देता है। अपने से चौदह साल बड़े पति के हाथों हिंसा झेलती बेबी किताब के पन्नों में अपने तीन बच्चों के साथ इस शादी को तोड़कर भागने का मार्मिक वर्णन करती है।

किताब के अधिकांश हिस्से मे बेबी का अपने जीवन के अच्छे, बुरे व बदसूरत हालातों में संघर्ष करके जीने के प्रयास का विवरण है। अपनी ज़िंदगी को हर मुमकिन कोशिश कर हिम्मत से बसर करने का उसका प्रयास काबिले-तारीफ़ है। उस नारकीय जीवन से आज़ाद होकर प्रोफ़ेसर प्रबोध कुमार, जो नामचीन हिंदी साहित्यकार प्रेमचंद के पोते हैं से उसकी मुलाकात, दिल्ली तक पहुंचने का सफ़र और अपने भीतर के तनाव से मुक्ति का वर्णन इस पुस्तक का मुख्य हिस्सा है।

पुस्तक में उभरने वाली एक अनोखी बात यह है कि अपने जीवन की मुश्किलों बयान करते हुए बेबी खुद को एक दर्शक के रूप में देखती है जिससे उसके लेखन का स्वभाव बदल जाता है। वह अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों की शिकायत नहीं करती बल्कि हौसले व निडरता से उनका सामना करती है।

पुस्तक का वृतान्त सहजता के साथ एक घटना से दूसरी घटना की ओर सरकता चला जाता है। पाठक के लिए यह पुस्तक एक साहित्यक रचना बेशक न हो परन्तु बेबी की लेखनी की गहराई उसकी दिलचस्पी कायम रखने में कामयाब रहती है।

पुस्तक के पिछले हिस्से में बेबी का अपने तीन बच्चों के साथ दिल्ली आगमन का विवरण है। यहां पर वह घरों में काम करती है जहां उसकी तनख्वाह काफी कम है और उसे रात को फुटपाथ पर सोना पड़ता है। कई दिनों की कमरतोड़ मेहनत के बाद बेबी प्रोफेसर प्रबोध के घर पहुंचती है।

शायद नये अनुभव और नई अंतर्दृष्टि को अब उसके जीवन में पहुंचने का मौका मिलने वाला था। किसी भी घरेलू कामगार की तरह बेबी घर के काम करती रहती है। एक दिन किताबों की साफ-सफाई करते समय उसे तसलीमा नसरीन का बांग्ला ग्रंथ, *आमार मेयबेला (मेरा बचपन)* मिलता है जिसे वह तल्लीनता से पढ़ने लगती है। प्रोफ़ेसर साहब उसे पढ़ते हुए देखते हैं। किताबों और पढ़ने में उसकी लगन को देखकर वे उसे लिखने के लिए प्रेरित करते हैं। यही लेखन अंत में उसकी उम्मीद और खुशी का मूल-मंत्र बन जाता है।

हालातों से उबरने वाली औरत के तौर पर बेबी के अनुभव उसकी लेखन शैली पर अपनी छाप छोड़ते हैं। बेबी की कलम की वेदना पाठक के दिलों को इस कदर छूती है कि पीड़ा से मन ऐंठ जाता है। पुस्तक का अंत वह एक गहन विचार से करती है "इंसान घर का काम करते हुए भी लिख सकता है।"

सभी महिलाओं के लिए इस पुस्तक का एक सशक्त संदेश है- कभी भी अपने सपनों को मरने नहीं देना चाहिए।

इस किताब का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है इसके पन्नों में दर्ज बेबी के साहस, दृढ़ता और जीवन की कठिनाइयों से जूझने का जुनून। यह रचना उन सभी पाठकों के लिए प्रेरणादायक है जो जीवन के आम-खास अनुभवों का अर्थ समझने में विशेष रूचि रखते हैं।

इस पुस्तक का मलयालम तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद किया गया है। जापानी व फ्रेंच अनुवाद भी जल्दी ही किया जाएगा। बेबी हालदार आज भी प्रोफ़ेसर प्रबोध कुमार के घर काम करती है। उसे गर्व है अपने आप पर। वह अपनी दूसरी किताब पर भी काम कर रही है।

—माधवी मेनन

घरेलू कामगारों के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा

घरेलू कामगारों के लिए एक अच्छी खबर है। श्रम मंत्रालय ने गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों के लिए शुरू की गई राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना को घरेलू कामगारों के लिए भी लागू करने का प्रस्ताव कैबिनट के सामने पेश किया है। इसके मायने हैं कि सरकार घरों में काम करने वाली श्रमिकाओं को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए पंजीकृत करे। इस प्रस्ताव से भारत के सबसे बड़े अंसगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए स्वास्थ्य बीमा सुविधाएं मुहैय्या कराई जाएंगी। घरेलू कामगारों के लिए बनाई समिति ने यह प्रस्ताव केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों की प्रतिक्रिया के लिए भेज दिया है। इस प्रस्ताव में यह भी मांग की गई है कि निजी नियोजन एजेंसियों के लिए पंजीकरण अनिवार्य बनाया जाए जिससे घरेलू कामगारों के शोषण और अवैध खरीद-फरोख्त के मामलों को नियंत्रित किया जा सके। उम्मीद है कि सभी पक्षों से इस अगुवाई को समर्थन मिलेगा जिससे घरेलू कामगारों को कुछ सामाजिक सुरक्षा मिल सके।

स्रोतः टाइम्स ऑफ़ इण्डिया, जुलाई 2010

मोलकरणी

अवधि : 25 मिनट

प्रस्तुति : युगान्तर

भाषा : हिन्दी

यह फ़िल्म महाराष्ट्र में घरेलू कामगारों के अधिकारों व काम के सम्मान के संघर्ष और आंदोलन को बयान करती है। शुरूआत होती है सुभद्रा नाम की एक घरेलू कामगार से जो अपनी मालकिन से वेतन बढ़ाने के लिए कहती है। उसे सबक सिखाने के लिए मालकिन उसे काम से निकाल देती है और किसी अन्य ज़रूरतमंद कामगार को नौकरी पर रख लेती है। सुभद्रा को यह अन्याय बर्दाश्त नहीं होता और वह अपने इलाके में अन्य कामगार महिलाओं से बात करके उन्हें इस तरह के अन्याय के ख़िलाफ़ एकजुट होने को प्रेरित करती है।

सुभद्रा कामगारों को इस बात पर राज़ी कर लेती है कि अब से न कोई काम करेगी, न किसी और कामगार को काम करने देगी, जब तक कि उनकी तनख्वाह न बढ़ाई जाए। इन कामगारों की छोटी छोटी गोष्ठियां होने लगती हैं जहां ये अपने काम से जुड़ी समस्याओं, उलझनों की चर्चा शुरू करती हैं। किस तरह सुबह सात बजे से पहले ही इनकी दिनचर्या शुरू हो जाती है, और महीने भर घरों में झाड़ू, बर्तन, कपड़े व सफाई करने के बाद महीने के 30 रुपए मिलते हैं। इस पर उन्हें घरों में छुआछूत, अलग खाने-पीने के बर्तन और कभी-कभी मारपीट जैसी हिंसा भी सहनी पड़ती हैं।

महिलाओं की इस अगुवाई पर कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और *पुणे शहर मोलकरणी संघ* की स्थापना की। फिर आठ सौ महिला घरेलू कामगारों ने शहर में जुलूस निकाला और चार से आठ दिनों तक हड़ताल की।

रात बारह बजे तक गोष्ठियां कीं। यह सिलसिला करीब पन्द्रह दिनों तक चलता रहा। इन गोष्ठियों में घरेलू काम से जुड़ी समस्याओं के साथ-साथ महिलाओं के अधिकारों पर भी बात होनी शुरू होने लगी। इन महिलाओं ने अपनी मांगों का निवेदन पत्र तैयार किया और कलेक्टर के सामने पेश किया। कामगारों की मांगें निम्न थीं:

- काम के अनुसार तनख्वाह
- बीमारी के समय तनख्वाह में कटौती न हो
- हर महीने दो दिन की छुट्टी
- छुट्टियों में मालिक के बाहर जाने पर कामगारों की तनख्वाह न काटी जाए
- एक महीने की तनख्वाह, एक हर साल बोनस के रूप में मिले
- घरों में अपमानजनक व्यवहार न किया जाए
- होली, दीवाली, गणेश चतुर्थी में जैसे बड़े त्योहारों पर वेतनयुक्त अवकाश

उन्हीं दिनों मज़दूर संघ की सभा के लिए श्रम मज़दूरों की एक सभा बुलाई गई थी जिस सभा में पहली बार घरेलू महिला कामगार महिलाओं की समस्या को भी सामने रखा गया। सभा में मांग हुई कि घरेलू कामगारों को समस्याओं के हल के लिए एक जांच समिति बनाई जाए। इस जुड़ाव से न सिर्फ़ घरेलू कामगार औरतों को मज़दूर संघ का सहयोग मिला बल्कि ऐसे मंचों पर घरेलू काम की, मज़दूरों की श्रेणी में पहचान भी बनी।

महिला घरेलू कामगारों की कुछ मांगे पूरी हुईं और कुछ नहीं। ऐसा नहीं है कि हड़ताल के दौरान इन महिलाओं को परिवार चलाने की मुसीबतें नहीं उठानी पड़ी। इनका बहुत मज़ाक उड़ाया गया, सबने कहा तब ये औरतें नेता बन गई हैं, मगर फिर भी इन्होंने हार नहीं मानी। इनकी एकजुटता ने इनके अधिकारों की मांग पूरी की जो राज्य में घरेलू कामगार की सामाजिक सुरक्षा बिल पारित होने का आधार बनी।

बेबी हालदार

निर्देशिका : अनु मेनन
अवधि : 22 मिनट
भाषा : अंग्रेज़ी

फ़िल्म एक घरेलू कामगार महिला, *बेबी हालदार* के जीवन सफ़र की कहानी कहती है जो अपने बचपन में पारिवारिक स्थितियों के कारण केवल चौथी कक्षा तक पढ़ पाती है मगर अपनी आत्म-कथा लिख उन तमाम औरतों की आवाज़ बनती है, जो हमारे समाज में गरीबी, अशिक्षा और गरिमापूर्ण जीवन जीने के हक़ से वंचित हैं।

फ़िल्म बेबी हालदार से बातचीत के दौरान उसके सशक्त व्यक्तित्व के कई पहलुओं को सामने लाती है। फ़िल्म की शुरूआत में बेबी हालदार की भूमिका दिल्ली में घरेलू कामगार के रूप में दिखाई गई है। बातचीत के दौरान पता चलता है कि बेबी की मां भी घरेलू कामगार थी और अपने पति की रोज़ की प्रताड़ना से पीड़ित थी। पारिवारिक स्थितियां कुछ बदलती है और बेबी को छोटी उम्र में छोड़कर मां को घर से निकलना पड़ता है। पिता दूसरी पत्नी लाते हैं और घर के तनाव भरे माहौल में और बढ़ोतरी होती है। पारिवारिक क्लेश में बेबी की पढ़ाई छूट जाती हैं और बारह साल की छोटी उम्र में उसकी शादी तीस साल के पुरुष से कर दी जाती है। बेबी के लिए अपने पति के साथ का अनुभव अपने पिता के घर के अनुभव से ज़्यादा भयावह साबित होता है। बेबी बताती है कि वो खुद बच्ची थी और दो बच्चों की मां बन गई। पति के साथ जब रहना दूभर हो गया तो उसने बच्चों को लेकर भाई के पास जाने की ठानी और पति का घर छोड़कर दिल्ली चली आई।

दिल्ली आकर बेबी के जीवन का नया सफ़र शुरू होता है। घरेलू कामगार की भूमिका में बेबी काम करना शुरू करती है। बेबी बताती है *'तसलीमा नसरीन की किताब जब मैंने पढ़ी तो मुझे लगा ये मेरी बातें हैं।'* अपने मालिक के प्रोत्साहन से वह अपनी जीवनी लिखती है। बेबी अपनी किताब के माध्यम से सवाल पूछती है कि 'क्यों घर के काम की कोई मान्यता नहीं होती? घर का काम छोटा क्यों माना जाता है? क्या दफ्तर का काम ही काम है?'

बेबी हालदार की जीवन एक किताब के रूप में भी प्रकाशित की गई है। प्रकाशक इस किताब के बारे में कहती हैं, 'बेबी की किताब चुप्पी तोड़ने और उसके लिखने पढ़ने के संघर्ष की कहानी है जिसमें बहुत दर्द है मगर कहीं भी कहानी में रोने-धोने के चित्रण नहीं मिलते। बेबी ने इस किताब को बहुत ही सुन्दर, सहज भाषा और गहराई से लिखा है।'

बेबी हालदार को कई सम्मान मिले हैं, जिनमें स्त्री अधिकार संगठन की तरफ से स्त्री सम्मान भी है। आज बेबी अपने दो बच्चों के साथ रहती है और घरेलू कामगार के साथ-साथ एक सफल लेखिका भी है।

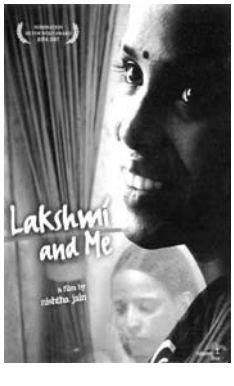

लक्ष्मी एंड मी

निर्देशिका : निष्ठा जैन
अवधि : 59 मिनट
भाषा : हिन्दी, तमिल, मराठी
(अंग्रेज़ी सबटाईटल के साथ)

यह डाक्यूमेंटरी फ़िल्म फ़िल्मकार व उसकी घरेलू कामगार लक्ष्मी के आपस के सहजपूर्ण रिश्ते को दर्शाती है। दोनों के बीच सिर्फ़ मालिक और नौकर का रिश्ता ही नहीं है बल्कि लक्ष्मी को फिल्मकार से हर तरह का सहयोग मिलता है। लक्ष्मी छः सौ रुपए महीने की तनख्वाह पर दस घंटे, छः घरों में काम करती है। अपने घर को चलाने की ज़िम्मेदारी लक्ष्मी पर ही है। उसका पिता शराबी है और मारपीट करता है। लक्ष्मी एक साहसी महिला है और अपने पिता की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ अपनी पंसद के लड़के के साथ घर बसाती है।

तकरीबन एक घंटे की इस फ़िल्म में लक्ष्मी के परिवार के हालातों का ब्योरा, उसकी अपनी संस्कृति, त्योहार मनाने के तरीकों व फ़िल्मकार के परिवार के साथ मेल-मिलाप के रिश्तों पर बात की गई है। फ़िल्म महिला घरेलू कामगार के संघर्षों के राजनैतिक पक्षों को सामने लाने में असफल रही है। यह पक्ष फ़िल्म फ़िल्मकार के अपनी घरेलू कामगार से सौहार्दपूर्ण रवैये पर केंद्रित है पर यह पक्ष भी केवल दो विभिन्न वर्गों की महिलाओं के आपसी रिश्ते तक सिमट कर रह गया है।

जागोरी प्रकाशन

हाल ही में जागोरी ने दिल्ली शहर में अंशकालिक घरेलू कामगारों के काम के हालातों पर एक शोध अध्ययन किया है। यह अध्ययन मुख्यतः मदनपुर खादर, जेजे कालोनी, नई दिल्ली में रहने वाली सात सौ घरेलू कामगारों पर आधारित है। अध्ययन में साक्षात्कार तथा कामगारों व नियोक्ताओं के साथ फोकस ग्रुप चर्चाएं शामिल की गई हैं। अध्ययन की रिपोर्ट जल्दी ही प्रकाशित की जाएगी। इस रिपोर्ट में घरेलू कामगारों के हक़ों व पहचान से जुड़े मुद्दों को उजागर किया गया है। साथ ही इसमें घरेलू कामगारों के काम की परिस्थितियों पर भी बात की गई है। इसमें उठाए गए अन्य मुद्दे हैं:

- वेतन, मुफ्त काम, अवकाश व कार्यस्थल सुविधाएं
- मालिकों से मिलने वाली सुविधाएं
- कामगारों के जीवन पर विस्थापन का प्रभाव मुख्यतः गतिशीलता
- प्रसूति संबधी व कार्यस्थल से जुड़ी हिंसाएं
- अपने काम के प्रति उनका नज़रिया

इन मुद्दों पर आधारित सम्प्रेषण सामग्री भी तैयार की गई है। इसमें गार्गी सेन द्वारा बनाई फ़िल्म 'तुम्हारा घर/ हमारा काम', हिंदी व अंग्रेज़ी पोस्टर व बुकमार्क शामिल हैं। यह सामग्री कुछ ही दिनों में जागोरी से उपलब्ध की जा सकेगी।

अधिकार और सम्मानः जयपुर महिला घरेलू कामगार

जयपुर में जागोरी द्वारा घरेलू कामगार महिलाओं पर शोध अध्ययन की यह रिपोर्ट महिला-काम व अधिकारों की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। कपड़े की फैक्टरियों में कार्यरत, घर पर पीस रेट पर काम करती, ठेले-स्टॉल लगाती और घरों में चौबीस घंटे या कुछ समय कार्यरत महिला कामगारों की समस्याओं को इस रिपोर्ट में उभारा गया है। यह रिपोर्ट अंग्रेज़ी में भी उपलब्ध है।

प्रतियां मंगवाने के लिए संपर्क करें:
महाबीर सिंह, जागोरी
दूरभाषः 011-26691219/20 • distribution@jagori.org

देश-विदेश में

महिलाओं की सुरक्षा पर सेमिनार

प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-मॉट्रियल 2002

विमेन इन सिटीज़ प्रोग्राम ऑफ़ द सिटी ऑफ़ मॉट्रियल ने 2002 में महिला व सुरक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया था जिसमें देश-विदेश के 250 सहभागी शामिल हुए थे। इस सेमिनार का मुख्य लक्ष्य था- विभिन्न परिवारों, स्त्री-पुरुष, समुदाय व सरकारी संस्थानों, नागरिक व स्थानीय प्रशासन व पुलिस सेवाओं, ग्रामीण व शहरी अध्ययन व व्यवहार तथा उत्तर-दक्षिण के बीच साझेदारी विकसित करना। इस सेमिनार का यह भी मकसद था कि मौजूदा जानकारियों व व्यवहारों की समीक्षा करके महिलाओं व समुदायों की सक्रिय कार्यवाई के लिए रणनीतियां व नज़रिए तय किए जाएं जिससे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठन एकजुट होकर काम कर सकें। चर्चाओं के दौरान नागरिक सशक्तता व सहभागिता के मुद्दों पर भी ज़ोर दिया गया जिससे सार्वजनिक स्थलों की सुरक्षा बढ़ाने की दिशा में काम किया जा सके। सेमिनार में यह भी तय किया गया कि स्थानीय अधिकारी व कार्यवाही तथा स्थानीय व अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों व व्यवहार शैलियों को किस प्रकार इस मुद्दे को सम्बोधित करने के लिए काम में लाया जा सकता है।

द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-बोगोटा 2004

सार्वजनिक स्थलों तथा घर के भीतर औरतों पर होने वाली हिंसा के बीच संबंध को उजागर करने के लिए स्थानीय, क्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क व संगठनों ने साथ मिलकर द्वितीय महिला व सुरक्षा सेमिनार का आयोजन बोगोटा में किया गया। इस सेमिनार में शामिल सभी तीन सौ सहभागी स्थानीय सरकारों, शोध व अकादमिक संगठनों, नागरिक समाज संस्थाओं व अंतर्राष्ट्रीय समूहों से आये थे। इस सेमिनार में चर्चित मुद्दे थे-महिलाओं व लड़कियों को सहभागिता, मोबिलाइज़ेशन व सशक्तता के लिए रणनीतियों का विकास तथा सार्वजनिक, निजी व प्रतिकात्मक स्थलों पर हिंसा व असुरक्षा का स्वरूप। स्थानीय अनुभवों को समझने के लिए शहर के विभिन्न हिस्सों में फील्ड ट्रिप आयोजित किये गये। इस सेमिनार का एक मुख्य आकर्षक था *महिला सुरक्षा एवार्ड* के अंतर्राष्ट्रीय विजेताओं का सम्मान करना।

तृतीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन-नई दिल्ली 2010

सार्वजनिक स्थलों पर औरतों की बढ़ती असुरक्षा तथा लैंगिक असमानताओं के कारण महिलाएं अपने नागरिक अधिकारों को पूरी तरह उपयोग करने में असक्षम हैं। इस सम्मेलन को आयोजित करने के पीछे उद्देश्य है शहर को सुरक्षित बनाना और इसमें औरतों की प्रमुख भागीदारी स्थापित करना। हमारा मानना है कि महिलाओं के लिए सुरक्षित शहर अन्य सभी के लिए भी पूर्णतः महफूज होंगे। यह सम्मेलन *जागोरी, विमेन इन सिटीज़ इंटरनेशनल, यूनिफ़ेम, यूएन हैबिटेट* का संयुक्त प्रयास है। सम्मेलन में महिला सुरक्षा मुद्दे से जुड़े नेटवर्क, संगठन, क्षेत्रीय, व राष्ट्रीय सरकारें, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, ज़मीनी स्तर पर कार्यरत समूह, अपराध संरक्षण संगठन, शोधकर्त्ता व नगर पालिका संगठन शामिल होंगे। इस सम्मेलन के माध्यम से अच्छे प्रशासन, महिलाओं की मूल सुविधाओं तक पहुंच, महानगरों में महिलाएं, सुरक्षित शहरों के गठन के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास आदि विषयों पर चर्चाएं होंगी। इस सम्मेलन का आयोजन 22-24 नवम्बर 2010 को दिल्ली के इण्डिया हैबिटेट सेंटर में किया जा रहा है। सम्मेलन के दौरान 'महिला व यातायात' विषय पर एक प्रदर्शनी भी आयोजित की जाएगी।

अन्य जानकारी के लिए जागोरी से सम्पर्क करें
safedelhi@jagori.org

अन्नदाता

अन्नदाता!
मेरी ज़बान पर तुम्हारा नमक है
तुम्हारा नमक मेरे बाप के होंठों पर
और मेरे इस बुत में
मेरे बाप का खून है
मैं कैसे बोलूं?
मेरे बोलने से पहले
तेरा अनाज बोल पड़ता है
कुछ एक बोल थे
पर हम अनाज के कीड़े हैं
और अनाज के बोझ तले
वह बोल दबकर रह गए
अन्नदाता!
मेरे माता पिता कामगार
कामगार की सन्तान कामगार
कामगार का काम
सिर्फ़ काम
बाकी भी तो काम
यही काम करता है,
वह भी एक काम,
यह भी एक काम
अन्नदाता!
मैं मांस की गुड़िया

खेल ले खिला ले
लहू का प्याला
पी ले पिला ले
तेरे सामने खड़ी हूं
इस्तेमाल की चीज़
जैसे चाहे इस्तेमाल कर लो
उगी हूं
पिसी हूं
बेलन से बिली हूं
आज गर्म तवे पर
जैसे चाहो उलट लो
मैं एक निवाले से बढ़कर कुछ नहीं
जैसे चाहो निगल लो
तुम लावे से बढ़कर कुछ नहीं
लावे में लपेट लो
कदमों में खड़ी
बांहों में समेट लो
अन्नदाता
मेरी जवाब
और इंकार?
यह कैसे हो सकता है!
हां. . . प्यार. . .
यह तुम्हारे मतलब की शै नहीं!

अमृता प्रीतम

मेहनत का नाम हो
मान और सम्मान हो
श्रम का वाजिब दाम हो
ज़िन्दगी न गुमनाम हो